मासिक समाचारपत्र • पूर्णांक 140 • वर्ष 15, अंक 4 • जुलाई 2025 • दस रुपये • (विशेष अंक) 20 पृष्ठ

मज़दूर बिगुल

गिग वर्कर्स को क्रान्तिकारी यूनियन के बैनर तले संगठित होना होगा 5

1975 का आपातकाल और आज का अघोषित आपातकाल 13

भाजपा के रामराज्य में बढ़ते दलित-विरोधी अपराध 9

मज़दूर वर्ग को एक दिवसीय हड़तालों के वार्षिक अनुष्ठानों से आगे बढ़ना होगा!

हमें हड़ताल के ताक़तवर हथियार को सालाना रस्मअदायगी और प्रतीकात्मकता की क़वायद में तब्दील नहीं होने देना चाहिए!

पूँजीवादी मुनाफ़े का चक्का जाम करने के लिए लम्बी लड़ाई की तैयारी आज से ही शुरू करनी होगी!

'मज़दूर बिगुल' के पन्नों पर हमारे द्वारा केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों के आह्वान पर हर साल होने वाली एक-दिवसीय या दो-दिवसीय हड़तालों के अनुष्ठानिक चरित्र के बारे में लगातार लिखा जाता रहा है। वजह यह है कि यह सालाना अनुष्ठान हड़तालों को रस्मअदायगी में बदल देते हैं, जो हड़तालें दरअसल मज़दूर वर्ग का एक ताक़तवर हथियार होती हैं। मज़दूर वर्ग के महान शिक्षक लेनिन ने हड़तालों को "युद्ध की पाठशाला" कहा था। लेनिन के मुताबिक हड़ताल एक ऐसी पाठशाला है जो मज़दूर वर्ग को एकताबद्ध होना सिखाती है, जो उन्हें बताती है कि वे केवल एकताबद्ध होने पर ही पूँजीपतियों के विरुद्ध संघर्ष कर सकते हैं; हड़तालें मज़दूरों को कारख़ानों के मालिकों के पूरे वर्ग के विरुद्ध और पूँजीपतियों की नुमाइन्दगी करने वाली सरकारों के विरुद्ध पूरे मज़दूर वर्ग के संघर्ष की बात सोचना सिखाती है। यह एक ऐसी पाठशाला है, एक ऐसा 'युद्ध का स्कूल' है जिसमें मज़दूर वर्ग पूरी जनता को, मेहनत करने वाले तमाम लोगों को पूँजी के जुए से मुक्ति के लिए अपने दुश्मनों के ख़िलाफ़ युद्ध करना सीखता है।

सम्पादकीय अग्रलेख

भारत में केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों द्वारा हर साल आयोजित की जाने वाली ये एकदिवसीय रस्मी कवायदें मज़दूर वर्ग के लिए हड़ताल के उपरोक्त महत्व को ही ख़त्म या बेअसर कर देती हैं।

इस वर्ष भी 9 जुलाई को केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों द्वारा आम तौर पर मोदी सरकार की मज़दूर-विरोधी नीतियों और मुख्य तौर चार लेबर कोडों के विरोध में एक दिवसीय हड़ताल का आयोजन किया गया। इससे पहले यह हड़ताल 20 मई को होने वाली थी, पर "राष्ट्रहित" में पुलवामा हमले के बाद 15 मई को केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों द्वारा इसे स्थगित करने की घोषणा कर दी गयी थी! मज़दूर वर्ग भली-भाँति जानता है कि "राष्ट्रहित" वास्तव में पूँजीपतियों का हित होता है। इस "राष्ट्रहित" के लिए मज़दूरों को ही हर-हमेशा पेट पर पट्टी बाँधकर कुर्बानी देनी पड़ती है। "राष्ट्रहित" में पूँजीपति और मालिकों की जमात अपना मुनाफ़ा कमाने का "अधिकार" तो कभी नहीं छोड़ते हैं। हाँ, हम मज़दूरों को ज़रूर अपने अधिकारों की हिफाज़त करने के संघर्ष को स्थगित करने की सलाह इन केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों के प्रतिनिधियों द्वारा दी जाती है। लेकिन इसमें ताज्जुब की कोई बात है भी नहीं। ये केन्द्रीय ट्रेड यूनियनें प्रत्यक्ष या परोक्ष तरीक़े से मालिकों के हितों की ही हिफाज़त करती हैं। इसलिए ही तो मज़दूर वर्ग के ताक़तवर हथियार यानी हड़ताल को अपने इन एकदिवसीय अनुष्ठानों के ज़रिये व्यर्थ करने का काम करती हैं।

उदारीकरण-निजीकरण के दौर के बाद से हर वर्ष ही इस प्रकार के अनुष्ठान इन केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों द्वारा आयोजित किये गये हैं। इन

(पेज 11 पर जारी)

मतदाता सूची संशोधन, 2025 : जनता के मताधिकार को चुराने के लिए भाजपा का हथकण्डा और पीछे के दरवाज़े से एनआरसी लागू करने की नयी साज़िश

● **अजीत**

देश में और विशेषकर बिहार में एक नयी परिघटना के बारे में सबसे ज़्यादा चर्चा हो रही हैं और वह है - मतदाता सूची संशोधन, 2025,। दरअसल 24 जून को चुनाव आयोग ने एक अधिसूचना जारी की और कहा कि मतदाता सूची का "विशेष गहन पुनरीक्षण" किया जायेगा। इसकी शुरुआत बिहार से होगी। इसके बाद देश के अन्य राज्यों में भी इसे लागू किया जायेगा। इस अधिसूचना के जारी होते ही सरकार ने इसे "फ़र्ज़ी मतदाता" को हटाने और "साफ़- सुथरा" चुनाव कराने के लिए ज़रूरी क़दम बताया तो वहीं विपक्ष और देश के प्रगतिशील तबके ने इसे जनता के वोट देने के जनवादी अधिकार पर हमला करार दिया। लेकिन असल में यह केवल वोट देने के अधिकार पर हमला नहीं बल्कि इससे बढ़कर देश की मेहनतकश जनता से नागरिकता छीनने वाली प्रक्रिया है। पीछे के दरवाज़े से NRC लागू करने वाली प्रक्रिया है। हम ऐसा क्यों कह रहें हैं इसपर आगे चर्चा करेंगे। पहले यह प्रक्रिया ठोस रूप में क्या है इसपर बात करते हैं।

क्या है यह मतदाता सूची का "विशेष गहन पुनरीक्षण"?

चुनाव आयोग ने इस प्रक्रिया के तहत यह बात कही है कि जिन लोगों का नाम 2003 के मतदाता सूची में नहीं हैं उन्हें मतदाता के तौर पर अपने आपको साबित करने के लिए कुछ ज़रूरी काग़ज़ात(जो कि आधार कार्ड, राशन कार्ड, मनरेगा कार्ड या ड्राइविंग लाइसेंस नहीं होगा) देने होंगे। बिहार में अभी क़रीब 8 करोड़ मतदाता हैं जिसमें लगभग 4 करोड़ 90 लाख मतदाताओं का नाम 2003 की मतदाता सूची में है। इसका मतलब क़रीब 3 करोड़ लोगों को अपने ज़रूरी काग़ज़ात दिखाने होंगे।

अब सवाल उठता है कि 3 करोड़ लोगों को काग़ज़ात दिखा कर अपना नाम मतदाता सूची में जुड़वाने में क्या समस्या है। वैसे भी चुनाव आयोग कह रही है कि पहले भी यह काम किया जाता रहा है। इसके साथ ही इस प्रक्रिया द्वारा फ़र्ज़ी मतदाताओं का नाम हटेगा और जो सही मतदाता हैं उनका नाम रहेगा तथा इससे लोकतन्त्र मज़बूत होगा।

सबसे पहली बात यह कि यह विशेष गहन पुनरीक्षण की प्रक्रिया देश में पहली बार हो रही है। इससे पहले गहन पुनरीक्षण किया जाता था जिसमें नये सिरे से मतदाता सूची

(पेज 12 पर जारी)

बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!

हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन के कमाण्डर,देश के सच्चे क्रान्तिकारी सपूत, आज भी सच्ची आज़ादी और इन्साफ़ के लिए लड़ रहे हर नौजवान के प्रेरणास्रोत

चन्द्रशेखर आज़ाद

के जन्मदिवस (23 जुलाई) पर

"आज़ाद का समाजवाद की ओर आकर्षित होने का एक और भी कारण था। आज़ाद का जन्म एक बहुत ही निर्धन परिवार में हुआ था और अभाव की चुभन को व्यक्तिगत जीवन में उन्होंने अनुभव भी किया था। बचपन में भावरा तथा उसके इर्द-गिर्द के आदिवासियों और किसानों के जीवन को भी वे काफ़ी नज़दीक से देख चुके थे। बनारस जाने से पहले कुछ दिन बम्बई में उन्हें मज़दूरों के बीच रहने का अवसर मिला था। इसीलिए, जैसा कि वैशम्पायन ने लिखा है, किसानों तथा मज़दूरों के राज्य की जब वे चर्चा करते तो उसमें उनकी अनुभूति की झलक स्पष्ट दिखायी देती थी।

आज़ाद ने 1922 में क्रान्तिकारी दल में प्रवेश किया था। उसके बाद से काकोरी के सम्बन्ध में फ़रार होने तक उन पर दल के नेता पण्डित रामप्रसाद बिस्मिल का काफ़ी प्रभाव था। बिस्मिल आर्य समाजी थे। और आज़ाद पर भी उस समय आर्य समाज की काफ़ी छाप थी। लेकिन बाद में जब दल ने समाजवाद को लक्ष्य के रूप में अपनाया और आज़ाद ने उसमें मज़दूरों-किसानों के उज्ज्वल भविष्य की रूपरेखा पहचानी तो उन्हें नयी विचारधारा को अपनाने में देरी न लगी।"

(आज़ाद व भगतसिंह के साथी क्रान्तिकारी शिव वर्मा की किताब 'संस्मृतियाँ' का एक अंश)

मज़दूर बिगुल डाक से न पहुँचने की शिकायतों के बारे में

हमें 'मज़दूर बिगुल' के कई नियमित पाठकों की ओर से अक्सर ऐसी शिकायतें मिल रही हैं कि अख़बार की प्रति उन्हें मिल ही नहीं रही है या अनियमित मिल रही है। ऐसे साथियों से आग्रह है कि वे एक बार अपने निकटतम डाकघर में लिखित शिकायत दर्ज करायें और उसकी प्रति हमें भी ईमेल या व्हाट्सएप पर भेज दें, ताकि हम जिस डाकघर से अख़बार पोस्ट करते हैं, वहाँ भी शिकायत दर्ज करा सकें।

पिछले काफ़ी समय के अनुभव और डाक विभाग के ही अनेक कर्मचारियों व अधिकारियों से बात करने के आधार पर यह स्पष्ट है कि यह सरकार जानबूझकर डाक विभाग की जनसेवाओं को नष्ट कर रही है ताकि इसके भी बड़े हिस्से को निजीकरण की ओर धकेला जा सके। भारत जैसे विशालकाय देश में, सीमित संसाधनों और तमाम दबावों के बावजूद लम्बे समय तक काफ़ी ज़िम्मेदारी और विश्वसनीयता के साथ काम करने वाली एक बेहद ज़रूरी जनसेवा को व्यवस्थित ढंग से बरबाद किये जाने के नतीजे हम लगातार देख रहे हैं। एक तरफ़ सेवाओं के दाम बढ़ाये जा रहे हैं, दूसरी ओर नयी भर्तियाँ नहीं करने, ठेकाकरण बढ़ाने और डाकिये सहित तमाम कर्मचारियों पर काम का बोझ बढ़ाते जाने से भी सेवाएँ प्रभावित हो रही हैं।

'बिगुल' जैसे जनपक्षधर पत्र-पत्रिकाओं और हमारे पाठकों के लिए इससे कठिनाइयाँ बढ़ गयी हैं लेकिन हम पूरी कोशिश कर रहे हैं कि आप तक अख़बार पहुँचता रहे। इसमें हमें आपका भी सहयोग चाहिए।

प्रिय पाठको,

अगर आपको 'मज़दूर बिगुल' का प्रकाशन ज़रूरी लगता है और आप इसके अंक पाते रहना चाहते हैं तो हमारा अनुरोध है कि आप कृपया इसकी सदस्यता लें और अपने दोस्तों को भी दिलवाएँ। आप हमें मनीऑर्डर भेज सकते हैं या सीधे बैंक खाते में जमा करा सकते हैं। या फिर QR कोड स्कैन करके मोबाइल से भुगतान कर सकते हैं।

मनीऑर्डर के लिए पता :
मज़दूर बिगुल,
द्वारा जनचेतना,
डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020

बैंक खाते का विवरण : Mazdoor Bigul
खाता संख्या : 0762002109003787,
IFSC: PUNB0185400
पंजाब नेशनल बैंक, अलीगंज शाखा, लखनऊ

QR कोड व UPI

UPI: bigulakhbar@okicici

मज़दूर बिगुल के बारे में किसी भी सूचना के लिए आप हमसे इन माध्यमों से सम्पर्क कर सकते हैं :
फ़ोन : 0522-4108495, 8853476339 (व्हॉट्सऐप)
ईमेल : bigulakhbar@gmail.com
फ़ेसबुक : www.facebook.com/MazdoorBigul

मज़दूर बिगुल की वेबसाइट

www.mazdoorbigul.net

इस वेबसाइट पर दिसम्बर 2007 से अब तक बिगुल के सभी अंक क्रमवार, उससे पहले के कुछ अंकों की सामग्री तथा राहुल फ़ाउण्डेशन से प्रकाशित सभी बिगुल पुस्तिकाएँ उपलब्ध हैं। बिगुल के प्रवेशांक से लेकर नवम्बर 2007 तक के सभी अंक भी वेबसाइट पर क्रमशः उपलब्ध कराये जा रहे हैं।

मज़दूर बिगुल का हर नया अंक प्रकाशित होते ही वेबसाइट पर निःशुल्क पढ़ा जा सकता है।

आप इस फ़ेसबुक पेज के ज़रिए भी 'मज़दूर बिगुल' से जुड़ सकते हैं :
www.facebook.com/MazdoorBigul

अपने कारख़ाने, वर्कशॉप, दफ़्तर या बस्ती की समस्याओं के बारे में, अपने काम के हालात और जीवन की स्थितियों के बारे में हमें लिखकर भेजें। आप व्हॉट्सएप पर बोलकर भी हमें अपना मैसेज भेज सकते हैं। नम्बर है : 8853476339

'मज़दूर बिगुल' का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियाँ

1. 'मज़दूर बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक़ से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफ़वाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'मज़दूर बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'मज़दूर बिगुल' स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेड्यूनियनों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की क़तारों से क्रान्तिकारी भर्ती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

मज़दूर बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय : 263, हरिभजन नगर, शहीद भगतसिंह वार्ड, तकरोही, इन्दिरानगर, लखनऊ-226016
फ़ोन: 8853476339
दिल्ली सम्पर्क : बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर, दिल्ली-90, फ़ोन: 9289498250
ईमेल : bigulakhbar@gmail.com
मूल्य : एक प्रति – 10/- रुपये
वार्षिक – 125/- रुपये (डाक ख़र्च सहित)
आजीवन सदस्यता – 3000/- रुपये

लाभार्थियों के फ़ेशियल रिकॉग्निशन व ई-केवाईसी के ज़रिये जनता की निगरानी और आँगनवाड़ीकर्मियों पर काम का बोझ बढ़ाती मोदी सरकार!

● प्रियम्बदा

भाजपा सरकार के महिला एवं बाल विकास मन्त्रालय द्वारा पिछले दिनों एक अधिसूचना जारी की गयी है। इसके तहत देशभर में आँगनवाड़ी केन्द्रों के ज़रिये मिलने वाली योजनाओं के लाभार्थियों के लिए फ़ेशियल रिकॉगनिशन और ई-केवाईसी करवाना अनिवार्य कर दिया गया है।

इस अधिसूचना के तहत 1 जुलाई 2025 से आँगनवाड़ी केन्द्रों पर आने वाले 3 से 6 साल के बच्चों की उपस्थिति से लेकर उनको हर रोज़ दिये जाने वाले पोषाहार की मात्रा को भी 'पोषण ट्रैकर एप' पर अपलोड करना अनिवार्य कर दिया गया है। मोदी जी के "डिजिटल इण्डिया" में पोषाहार की गुणवत्ता को भी अपलोड करने का कोई उपाय होता तो क्या ही बात होती! यह 'फ़ेशियल रिकॉग्निशन सिस्टम' न तो लाभार्थियों के हक़ में हैं और न ही आँगनवाड़ीकर्मियों के। कैसे, आइए देखते हैं।

सरकार ने अब सभी लाभार्थियों के लिए फ़ेस रिकॉग्निशन के ज़रिए पंजीकरण कराना ज़रूरी बना दिया है। इसके लिए 'पोषण ट्रैकर ऐप' में मौजूद 'सिटीजन मॉड्यूल' के ज़रिये, कहने के लिए, लाभार्थी के पास ख़ुद भी अपना पंजीकरण करने का भी विकल्प है। लेकिन सवाल यह है कि जिस ऐप का इस्तेमाल करने में ख़ुद आँगनवाड़ीकर्मी परेशानहाल हो जाती हैं, उसका इस्तेमाल लाभार्थी कितना कर पायेंगे?! 'पोषण ट्रैकर एप' के यूज़र इण्टरफ़ेस और तकनीकी समस्याओं के बारे में देशभर की आँगनवाड़ीकर्मियों ने सवाल खड़े किये हैं। दूसरा, समेकित बाल विकास परियोजना के तहत दी जा रही सेवाओं का लाभ लेने वाले ज़्यादातर लोगों के पास या तो स्मार्टफ़ोन नहीं होते हैं या वे हर महीने महँगे इण्टरनेट बिल भरने की क्षमता नहीं रखते हैं। एक सर्वे के अनुसार देश की सबसे ग़रीब आबादी की 33 प्रतिशत महिलाओं (जो समेकित बाल विकास परियोजना की लाभार्थी हैं या लाभार्थी बच्चों की घर में मुख्य रूप से देखभाल करती हैं) के पास स्मार्टफ़ोन नहीं है और 66 प्रतिशत महिलाओं ने इण्टरनेट सेवा का इस्तेमाल नहीं किया था। इन हालात में लाभार्थियों से स्वयं पंजीकरण की उम्मीद करना एक भोंडा मज़ाक नहीं है तो और क्या है? यह वास्तव में, लाभार्थियों को लाभ से वंचित कर देने की योजना है।

फ़ेशियल रिकॉगनिशन और ई-केवाईसी अनिवार्य बनाने का दूसरा पहलू यह भी है कि बड़े पैमाने पर लाभार्थियों की निजी जानकारी सरकार इकट्ठा करेगी जो नागरिकों की निजता का हनन ही होगा। 2023 में एक अमरीकी साइबर फ़र्म ने खुलासा किया था कि 81.5 करोड़ भारतियों के आधार कार्ड के निजी विवरण लीक कर दिये गये थे। ऐसे में फ़ेशियल रिकॉगनिशन और ई-केवाईसी के तहत जुटायी जा रही जानकारी के सुरक्षा की क्या गारण्टी होगी?

इस अधिसूचना के आँगनवाड़ी कर्मियों पर होने वाले असर की बात करें तो उनके काम का बोझ और बढ़ जाएगा, और इसके साथ बढ़ेगा उनका शोषण। आँगनवाड़ीकर्मियों को मुहैया किये गये स्मार्टफ़ोन हों या 'पोषणट्रैकर ऐप' हों, सरकार के "डिजिटल इण्डिया" के गुलाबी सपने से इन दोनों की हक़ीक़त कोसों दूर है। सरकार महिलाकर्मियों से डिजिटल काम करवाने में कोई चूक नहीं चाहती है, लेकिन जब इण्टरनेट बिल के समय से भुगतान की बात आती है, तब सरकार अपने हाथ खड़े कर देती है। दूसरा, 'पोषण ट्रैकर ऐप' को लेकर हमेशा ही महिलकर्मियों को दिक़्क़तों का सामना करना पड़ा है – कई बार ऐप खुलता नहीं है, वज़न और लम्बाई के डेटा नहीं लेता है; और अब एक ऐसे एप में सरकार ने फ़ेशियल रिकॉगनिशन भी ज़रूरी बना दिया है। हालाँकि इसे अनिवार्य हाल में ही किया गया है लेकिन मोटे तौर पर इस योजना को दिल्ली सहित देश भर में पहले ही लागू कर दिया गया था। आँगनवाड़ीकर्मियों ने इसकी शिकायत भी की कि अक्सर ही फ़ेशियल रिकॉगनिशन तकनीकी दिक़्क़तों की वजह से लाभार्थी को पहचानने से इनकार कर देता है। कहने का अर्थ यह कि यदि किसी आँगनवाड़ी केन्द्र पर लाभार्थी पोषाहार ले लेते हैं लेकिन उनका फ़ेशियल वेरिफ़िकेशन फ़ेल हो जाता है, तो उन्हें अनुपस्थित माना जाएगा। इसकी ज़िम्मेदारी किसके कन्धे पर आयेगी? आँगनवाड़ीकर्मियों के! वैसे ही आँगनवाड़ीकर्मी 'पोषण ट्रैकर एप' पर अपनी तय समयसीमा के बाद काम करने के लिए मजबूर थीं, अब उनके लिए नयी सिरदर्दी होगी लाभार्थियों को पोषाहार देने के बाद उनकी तस्वीर को एप पर अपलोड करना! कई जगहों पर एक ही लाभार्थी के फ़ेस रिकॉग्निशन में त्रुटि दिखाने की वजह से उन्हें बार-बार आँगनवाड़ी केन्द्रों के चक्कर लगाने पड़ते हैं चाहे वे गर्भवती महिलाएँ हो, स्तनपान कराने वाली माएँ हो या फिर 0-6 साल के छोटे बच्चे हों।

समेकित बाल विकास परियोजना का घोषित मक़सद ज़रूरतमन्द लोगों तक आवश्यक सुविधाएँ और पोषाहार पहुँचाने का है। इसे डिजिटल करना न केवल आँगनवाड़ीकर्मियों का काम बढ़ाना होगा बल्कि उस ज़रूरतमन्द आबादी तक इस परियोजना की पहुँच को ही सीमित कर देना होगा। दिल्ली स्टेट आँगनवाड़ी वर्कर्स एण्ड हेल्पर्स यूनियन सरकार के इस क़दम का विरोध करती है। हम माँग करते हैं कि :

- फ़ेशियल रिकॉगनिशन सिस्टम व ई-केवाईसी को रद्द किया जाए।
- आँगनवाड़ीकर्मियों को बेहतर स्मार्टफ़ोन मुहैया किये जाएँ।
- स्मार्टफ़ोन के लिए बिल का भुगतान समय से किया जाए।
- 'पोषण ट्रैकर एप' को दुरुस्त किया जाए व उपयोग में आसान बनाया जाए।

भारतीय रेल किराये में "मामूली" बढ़ोत्तरी : जनता से पैसे वसूलने का ग़ैर-मामूली तरीक़ा

● वृषाली

1 जुलाई से भारतीय रेल के किराये में "मामूली" बढ़ोत्तरी लागू हुई है। मोदी जी ने देश की जनता पर घनघोर कृपा की बरसात की है! पूरे "गोदी मीडिया" में इसी बात की चर्चा है कि यह अब तक की सबसे कम बढ़ोत्तरी है! भारतीय रेल ने ग़ैर-एसी मेल/एक्सप्रेस ट्रेनों के लिए यात्री किराये में 1 पैसे प्रति किलोमीटर, एसी क्लास के लिए 2 पैसे प्रति किलोमीटर व जनरल के सेकण्ड क्लास में 0.5 पैसे प्रति किलोमीटर की बढ़ोतरी की है। इस बढ़ोत्तरी से रेलवे को प्रति वर्ष तक़रीबन 990 करोड़ की अतिरिक्त आमदनी होगी। रेलवे ने हवाला दिया है कि इस बढ़ोत्तरी से सेवाओं और रेलवे के ढाँचे को बेहतर किया जाएगा जिससे "फ़ायदा" यात्रियों का होगा।

अव्वलन तो यह बात कि बेशक़ यह बढ़ोत्तरी बेहद "मामूली" नज़र आ सकती है, लेकिन इस "मामूली" रक़म से सरकार के पास करोड़ों का राजस्व इकट्ठा होगा। वहीं रेलवे में सफ़र करने वाली आम जनता को किराये में बढ़ोत्तरी से "लाभ" मिलने के उदाहरण तो आज तक नज़र आये नहीं हैं। इससे पहले भाजपा सरकार ने "आपदा में अवसर" ढूँढते हुए 2020 में कोविड के दौरान किराये में 4 पैसे प्रति किलोमीटर की बढ़ोत्तरी की थी, बुज़ुर्ग यात्रियों को मिलने वाली छूट ख़त्म कर दी गयी थी। यही नहीं, "बहुत हुई महँगाई की मार, अबकी बार मोदी सरकार" का शिगूफ़ा उछाल कर 2014 में सत्ता पर क़ाबिज़ हुई भाजपा ने सरकार में आते ही रेलवे किराये में बेतहाशा बढ़ोत्तरी की थी — यात्री किराये में 14.2 प्रतिशत और माल भाड़े में 6.5 प्रतिशत। ये तो वे बढ़ोत्तरियाँ हैं जो सीधे तौर पर नज़र आती हैं। इसके अलावा मोदी सरकार ने किया यह भी है कि पैसेंजर ट्रेनों के नाम बदलकर उन्हें सुपरफ़ास्ट ट्रेन घोषित कर दिया – यानी ट्रेन वही पर वसूली नयी! यही नहीं, मोदी सरकार ने वसूली का एक नया सिस्टम "डाइनैमिक फ़ेयर" के नाम पर भी निकाला। यह वसूली सिस्टम राजधानी, दुरन्तो और शताब्दी जैसी ट्रेनों में लागू किया की गयी। यानी इन ट्रेनों में टिकट का किराया सीटों की उपलब्धता के अनुसार बढ़ता जाता है। हर 10 फ़ीसदी सीट बुक होने के साथ किराये में 10 फ़ीसदी की बढ़ोत्तरी होती जाती है और अधिकतम 1.5 गुना हो जाती है।

मोदी जी वन्दे भारत ट्रेनों और अमृत भारत रेलवे स्टेशनों का उद्घाटन कर रहे हैं और जनता को (अ)मृत रेल यात्राओं की सुविधा दे रहे हैं! 'द हिन्दू ' की अक्टूबर 2024 की एक रिपोर्ट के अनुसार पिछले 5 सालों में 200 बड़े रेल हादसे हुए जिनमें 351 लोगों की मौत हो गयी और 970 ज़ख्मी हुए। आधिकारिक आँकड़ों के कहना है कि ट्रेन संचालन के दौरान होने वाली दुर्घटनाओं में 2001 से 2023 में कमी हुई है – 0.44 दुर्घटना प्रति ट्रेन किलोमीटर से 0.1 दुर्घटना प्रति ट्रेन किलोमीटर। एक वेबसाइट के अनुसार इस दावे के पीछे की सच्चाई यह है – देश में हर दिन तक़रीबन 23,000 ट्रेनें चलती हैं, 14,000 रेलगाड़ी व 9,000 मालगाड़ी। यदि यह मान लिया जाये कि ये सभी ट्रेनें हर दिन 500 किलोमीटर का सफ़र तय करती हैं तब हर दिन, औसतन, 0.115 करोड़ ट्रेन किलोमीटर का संचालन। इस अनुसार हर 10 दिन पर, कहीं न कहीं, किसी न किसी स्तर पर, कोई न कोई हादसा होता है।

मोदी जी ने 2017 में ही कहा था कि "जो हवाई चप्पल पहनकर घूमता है, वह हवाई जहाज में भी दिखना चाहिए, यह मेरा सपना है।" लेकिन मोदी राज में आम जनता की हालत रेल में सफ़र करने लायक भी नहीं बची है। 'आर्टिकल 14' की 2024 की एक रिपोर्ट के मुताबिक 2013-14 के मुक़ाबले 2022-23 में रेलवे में सफ़र करने वाले यात्रियों की संख्या में 32 फ़ीसदी की कमी आयी है; 2021-22 में रेलवे का सफ़र सभी यात्रियों के लिए कुलमिलाकर 108 फ़ीसदी महँगा हो गया था, 2022-23 तक सेकण्ड क्लास श्रेणियों की सीटों में 13 फ़ीसदी की कमी कर दी गयी थी। सेकण्ड क्लास में सफ़र करने वाले यात्रियों (आम मेहनतकश-मज़दूर) की संख्या में 2013 से हर साल औसतन 5 प्रतिशत की कमी आयी है। 2013 में जहाँ 380 करोड़ लोगों ने रेलवे के सेकण्ड क्लास में सफ़र किया, यही संख्या 2023 में घट कर 230 करोड़ हो गयी। 2014 से 2023 के बीच द्वितीय श्रेणी की सीटों में 14 फ़ीसदी की बढ़ोत्तरी हुई। इसी दौरान एसी सीटों में 141 फ़ीसदी की बढ़ोत्तरी की गयी। 2005 में 23 प्रतिशत एसी कोच थे और 77 प्रतिशत स्लीपर व जनरल कोच जबकि 2023 में स्लीपर व जनरल कोच 46 प्रतिशत ही रह गये और एसी कोच की संख्या बहुत बढ़ गई है। 2012 से 2022 के बीच स्लीपर का किराया मेल और एक्स्प्रेस ट्रेनों में क्रमशः 343 प्रतिशत और 413 प्रतिशत बढ़ा है। रेलवे की कमाई का बोझ स्लीपर, सेकण्ड क्लास और अनारक्षित में सफ़र करने वालों पर ज़्यादा है और एसी में सफ़र करने वालों पर कम। रेल में रोज़ाना सफ़र करने वाले 2 करोड़ 40 लाख लोगों में सबसे ज़्यादा संख्या जनरल और स्लीपर में चलने वालों की होती है लेकिन उनकी सुविधा पर सबसे कम ध्यान दिया जाता है। 2023 में अप्रैल से अक्टूबर के बीच कुल 390.2 करोड़ रेल यात्रियों में से 95.3 फीसदी ने जनरल और स्लीपर क्लास में यात्रा की थी।

मोदी सरकार के कार्यकाल में रेलवे की हालत बद से बदतर हो गयी है। रेलवे के किराये में लगातार बढ़ोत्तरी हो रही और दूसरी तरफ़ आम जनता भेड़ बकरियों की तरह रेलवे में सफ़र करने को मजबूर की जा रही। रेल देश में परिवहन का सबसे बड़ा साधन है, इसे लगातार बर्बाद करके, किराये में बढ़ोत्तरी करके इसे ग़रीब विरोधी बनाया जा रहा है। सार्वजनिक परिवहन तन्त्र को पूरी तरह बर्बाद करके निजी हाथों में सौंपने की तैयारी जारी है। इसका एक हालिया दूसरा उदाहरण मुम्बई की बेस्ट बस सर्विस भी है। आम जनता की जेबों से किराया बढ़ोत्तरी, टैक्स, जीएसटी वसूलने में कोई कमी-कोताही नहीं है, लेकिन बुनियादी सुविधाओं के नाम पर उनकी न्यूनतम ज़रूरतें भी पूरी नहीं।

क़ायदे से जनता के ऊपर एक पैसा प्रति किलोमीटर भी कर वृद्धि नहीं की जानी चाहिए। क्योंकि यह आम जनता अपनी मेहनत के बूते पहले ही इस देश को चला रही है, सबकुछ बना रही है, सबकुछ पैदा कर रही है। सरकार को सार्वजनिक कामों के लिए अपने राजस्व के लिए अमीर वर्गों और पूँजीपतियों पर अतिरिक्त कर लगाने चाहिए। लेकिन 1990 में शुरू हुए नवउदारवाद के दौर में और ख़ास तौर पर 2014 से मोदी सरकार के दौर में उल्टी गंगा बह रही है। अमीरज़ादों को करों से छूटें दी जा रही हैं, उनके लिए हर चीज़ को सस्ता किया जा रहा है, जबकि जनता के लिए ज़रूरी चीज़ों को, सेवाओं को महँगा किया जा रहा है और उन पर जीएसटी व पेट्रोलियम उत्पादों पर लगने वाले करों और शुल्कों के ज़रिये टैक्सों का बोझ बढ़ाया जा रहा है। मोदी सरकार के नारे 'सबका साथ' का अर्थ है, देश की उन्नति में मज़दूरों-मेहनतकशों की मेहनत को निचोड़ना और 'सबका विकास' का अर्थ है देश के धन्नासेठों और पूँजीपतियों का विकास।

भ्रष्टाचार की भेंट चढ़ा दिल्ली के शाहबाद डेरी इलाके का उच्च माध्यमिक विद्यालय

● नौरीन

कहा जाता है कि बच्चे किसी भी देश का भविष्य होते हैं। लेकिन शाहबाद डेरी (दिल्ली) के हज़ारों बच्चों का ही भविष्य आज ख़तरे में है। जैसे दूध में से मक्खी को निकालकर दूर फेंक दिया जाता है, वैसे ही डेरी के बच्चों को उनके स्कूल से निकालकर दूर रोहिणी के सेक्टर-27 के सुनसान इलाक़े में फेंक दिया गया है। इस स्कूल में पढ़ने वाले ज़्यादातर बच्चे मज़दूर और निम्न मध्यवर्गीय परिवार से आते हैं। अभिभावकों का कहना है कि उन्होंने अपना गाँव, अपना घर, सब कुछ छोड़कर दिल्ली आने का फ़ैसला इस उम्मीद के साथ कि दिल्ली जैसे शहर में जाकर कुछ काम करेंगे और अपने बच्चों को पढ़ायेंगे, ताकि आगे चलकर वो एक अच्छा जीवन जी सकें। लेकिन आज एक ही झटके में हमारी इन सारी उम्मीदों पर मानो नाउम्मीदी के काले घने बादल मण्डराने लगे हैं। वैसे तो महज़ शिक्षा से मज़दूर वर्ग के बच्चे अच्छे जीवन की उम्मीद नहीं पाल सकते हैं, लेकिन शिक्षा उनके लिए ज़रूरी है क्योंकि आज की दुनिया की सच्चाई को और अपनी मुक्ति के रास्ते को भी वे तभी समझ सकते हैं। इसलिए मज़दूर वर्ग शिक्षा को जन्मसिद्ध बुनियादी अधिकार मानता है। लेकिन उत्तर प्रदेश से लेकर दिल्ली तक भाजपा की फ़ासीवादी मोदी सरकार बच्चों को तरह-तरह से इस अधिकार से वंचित करने में लगी हुई है।

स्कूली शिक्षा किसी भी बच्चे के भविष्य की बुनियाद होती है। लेकिन शाहबाद डेरी के हज़ारों बच्चों से उनका स्कूल छीनकर उनके भविष्य को अँधेरे में धकेला जा रहा है। उनसे पढ़ने का अधिकार छीना जा रहा है। गर्मी की छुट्टी ख़त्म होने से 4 दिन पहले मीटिंग बुलाकर स्कूल प्रशासन ने अभिभावकों और बच्चों को जानकारी दी की उनका स्कूल सेक्टर-27 में शिफ़्ट किया जा रहा है। बच्चे कैसे जायेंगे, कैसे आयेंगे, उनकी सुरक्षा की गारण्टी किसकी होगी, इस पर स्कूल प्रशासन मौन है। आनन-फानन में स्कूल को सेक्टर-27 में तो शिफ़्ट कर दिया गया है, लेकिन स्कूल जाने वाले बच्चे बता रहे हैं कि वहाँ पीने का पानी तक नहीं है। घर से दो-दो बोतल पानी लेकर जाते हैं और छुट्टी होने तक उसी से काम चलाते हैं। इसके अलावा बाथरूम में पानी नहीं आता, पंखे नहीं चल रहे हैं, बिजली नहीं आती है। जो अभिभावक स्कूल देखने गये हैं वे बता रहे हैं कि स्कूल नहर के किनारे है, दुर्घटना होने की सम्भावना हमेशा बनी रहती है। स्कूल का रास्ता इतना ख़राब है कि आये-दिन बच्चों से भरी हुई ई-रिक्शा पलट रही है। स्कूल खुलने के हफ़्ते भर के भीतर तीन बार ई-रिक्शा पलटने की घटना सामने आ चुकी है। स्कूल शिफ़्ट होने की वजह से बहुत सारे बच्चे ऐसे हैं, जिन्हें अपनी पढ़ाई बीच में छोड़नी पड़ रही है। घर की स्थिति ऐसी नहीं है कि वह महीने के 1200 रुपये आने-जाने का किराया देकर पढ़ने जाएँ। अभिभावकों का कहना है कि वह ख़ुद महीने के 8000 रुपये कमा रहे हैं, ऐसे में दो बच्चे स्कूल जाते हैं तो 2400 रुपये उनके आने-जाने के किराये का हो जाता है। ऐसी स्थिति में हम कमरे का किराया कैसे देंगे, महीने भर खायेंगे क्या। उनके सामने अपनी पढ़ाई पूरी करने का कोई रास्ता नज़र नहीं आ रहा है।

एक ओर अमीरज़ादों के लिए महलों समान सर्वसुविधासम्पन्न स्कूल हैं, जिनकी फ़ीसें ही इतनी हैं कि आम मेहनतकश आदमी के साल भर की कमाई हो, वहीं दूसरी ओर दयनीय स्थिति में पड़े हुए सरकारी स्कूलों को भी अब मज़दूरों-मेहनतकशों के बच्चों से छीना जा रहा है।

शाहबाद डेरी में आम लोगों के इस मसले को लेकर रोष मौजूद था और 'भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी' ने इस मसले को उठाया।

भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी के नेतृत्व में किया गया स्थानीय विधायक का घेराव

शाहबाद डेरी (दिल्ली) में चलाये जा रहे 'स्कूल बचाओ, बच्चों के भविष्य को बचाओ' अभियान के तहत 11 जुलाई को स्थानीय भाजपा विधायक रविन्द्र इन्द्रराज का घेराव किया गया। ज्ञात हो कि डेरी के एकमात्र उच्च माध्यमिक विद्यालय को, रोहिणी के सेक्टर 27 में शिफ़्ट कर दिया गया है। वहाँ पहुँचने के लिए न तो साधन की व्यवस्था है, न ही सुरक्षा की गारण्टी। स्कूल मुख्य सड़क से लगभग 2.5 किलोमीटर अन्दर है। इलाक़ा इतना सुनसान है कि बच्चों और अभिभावकों के बीच डर का माहौल है।

11 जुलाई को डेरी के छात्र व उनके अभिभावक स्कूल की समस्या को लेकर स्थानीय विधायक से मिलकर अपना माँगपत्रक सौंपने गये थे। लेकिन विधायक रविन्द्र इन्द्रराज अपने कार्यालय पर नहीं मिले। रोज़ सुबह "जनता दरबार" का दिखावा करके सोशल मीडिया पर फ़ोटो डालने वाले विधायक से जब डेरी की जनता मिलने पहुँची तब विधायक महोदय ने मिलना तो दूर लोगों से फ़ोन पर बात करने की भी ज़हमत नहीं उठायी। जब लोगों ने विधायक से मिलने की बात की तो वहाँ मौजूद भाजपा के दलाल और गुण्डों ने तरह-तरह के बहाने बनाने शुरू किये। उन्होंने वहाँ मौजूद महिलाओं को धमकाया और वहाँ वीडियो बना रही महिलाओं के फ़ोन छिनने लगे। इसके बाद लोगों ने अपनी एकजुटता से इन गुण्डों को मुँहतोड़ ज़वाब दिया। इसके साथ ही विधायक के कार्यालय में इस चेतावनी के साथ माँगपत्रक सौंपा गया कि अगर तत्काल प्रभाव से इसपर काम नहीं हुआ, तो डेरी की जनता विधायक को अपनी गलियों में नहीं घुसने देगी।

भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी ने नेतृत्व में इलाके के लोगों ने दिल्ली सरकार से माँग की है कि-

- शाहबाद डेरी के बच्चों के लिए डेरी इलाके में ही पढ़ने की व्यवस्था होनी चाहिए। स्थानीय उच्च माध्यमिक विद्यालय का नवनिर्माण/मरम्मत जल्द से जल्द किया जाये, व इसकी समय सीमा सार्वजनिक की जाये। जब तक निर्माण कार्य पूरा नहीं हो जाता तब तक डेरी में या उसके नज़दीक ही बच्चों के लिए पढ़ाई की व्यवस्था की जाये ताकि उनकी शिक्षा बिना रुकावट जारी रह सके
- स्कूल आने-जाने वाले बच्चों की सुरक्षा के पुख़्ता इन्तज़ाम किया जाये
- स्कूल में पीने के पानी की पर्याप्त सुविधा उपलब्ध करवायी जाये
- स्कूल में बाथरूम की सुविधा दुरुस्त की जाये, व बाथरूम की साफ़-सफ़ाई सुनिश्चित की जाये
- शाहबाद डेरी के उच्च माध्यमिक विद्यालय के निर्माण/मरम्मत में हुई धाँधली की निष्पक्ष जाँच की जाये, व अपराधियों पर सख़्त कार्रवाई की जाये
- शाहबाद डेरी के उच्च माध्यमिक विद्यालय के निर्माण/मरम्मत में आये ख़र्च का पूरा हिसाब सार्वजनिक किया जाये

भ्रष्टाचार के बोझ तले दबा डेरी का उच्च माध्यमिक विद्यालय

शाहबाद डेरी में कक्षा आठवीं से बारहवीं तक का एक ही स्कूल है। इसमें क़रीब 8000 बच्चे पढ़ते हैं। इस उच्च माध्यमिक विद्यालय में बच्चों को दो शिफ़्ट में पढ़ाया जाता है। आपको जानकर हैरानी होगी कि इस स्कूल की बिल्डिंग का पुनर्निर्माण 2020 में हुआ था और 2 जनवरी 2020 को तत्कालीन मुख्यमन्त्री अरविन्द केजरीवाल उद्घाटन करने आये थे। आज स्कूल जिस जर्जर अवस्था में है, उससे यह साफ़ है कि स्कूल के पुनर्निर्माण में बड़े पैमाने पर भ्रष्टाचार हुआ है, घपलेबाज़ी की गयी है। डेरी के अधिकतर बच्चे मज़दूर और निम्न मध्यवर्गीय परिवार से आते हैं। उनके लिए यही एकमात्र स्कूल था, जिसमें पढ़ाई करना मुमकिन था। लेकिन स्कूल निर्माण में हुए घोटाले ने डेरी के बच्चों से उनका स्कूल छीन लिया है। 8000 बच्चों के भविष्य को अन्धेरे में डालने का काम किया है। दूसरी तरफ़ भारतीय जनता पार्टी और आम आदमी पार्टी एक दूसरे के ऊपर 'तू नंगा तू नंगा' का कीचड़ उछाल रही हैं, एक-दूसरे पर आरोप-प्रत्यारोप लगा रही हैं। लेकिन हम जानते हैं कि आम आदमी पार्टी हो या भारतीय जनता पार्टी, दोनों ने ही शिक्षा व्यवस्था को खोखला करने में कोई कसर नहीं छोड़ी है।

आज केन्द्र और दिल्ली में भारतीय जनता पार्टी की सरकार है। लेकिन यह वही भारतीय जनता पार्टी है जो नयी शिक्षा नीति लाकर स्कूलों का निजीकरण कर रही है, फ़ीस बढ़ा रही है, आम घरों से आने वाले बच्चों से शिक्षा दूर कर रही है। भारतीय जनता पार्टी ने शिक्षा को पूरी तरह से एक बाज़ारू माल बना दिया है: जिसकी ज़ेब में जितना पैसा है वह अपनी औकात के हिसाब से शिक्षा ख़रीद सकता है। इस नीति की शुरुआत कांग्रेस सरकारों ने ही कर दी थी, लेकिन इसने असली रफ़्तार पकड़ी है मोदी सरकार के पिछले 11 सालों में।

हम देख रहे हैं कि पूरे देश भर में जहाँ कहीं भी मज़दूरों के बच्चे पढ़ते हैं, वहाँ के स्कूलों की स्थिति बदतर है और पहले से ज़्यादा बदतर होती जा रही है। यह जानबूझकर किया जा रहा है ताकि प्राईवेट स्कूलों का धन्धा और भी ज़्यादा चमक सके। इन सरकारी स्कूलों में कभी बच्चों के ऊपर मलबा गिर जाता है, कभी कमरे में करण्ट आने लगता है, कहीं पीने का पानी नहीं होता तो कहीं शौचालय की व्यवस्था नहीं होती। कई स्कूलों में ब्लैकबोर्ड, डेस्क, बेंच, कुर्सियाँ और पढ़ाने के लिए अध्यापक तक नहीं हैं।

सरकारी आँकड़ो के अनुसार पिछले 10 वर्षों में 89,441 सरकारी स्कूल बन्द हुए हैं। इसमें 61 प्रतिशत उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश के स्कूल हैं। वहीं दूसरी तरफ़ निजी स्कूल 14 प्रतिशत बढ़े हैं। एक तरफ़ तो सरकार, सरकारी स्कूलों को या तो बन्द कर रही है या उसे दूर शिफ़्ट कर रही है, ताकि वह हमारे बच्चों की पहुँच से दूर हो जाये, वहीं दूसरी तरफ़ प्राइवेट स्कूलों को बढ़ावा दिया जा रहा है, प्राइवेट स्कूल खोले जा रहे हैं। यह बात हमें समझनी होगी कि आज शिक्षा को ख़रीदने-बेचने का माल बना दिया गया है। प्राइवेट स्कूलों की दुकान चल सके, इसलिए सरकारी स्कूलों को बन्द किया जा रहा है या उसे दूर शिफ़्ट किया जा रहा है।

क्या कहता है क़ानून?

शिक्षा का अधिकार (आरटीई) कानून के अनुसार, प्राथमिक विद्यालय (कक्षा 1 से 5) के लिए बच्चे के घर से 1 किलोमीटर के दायरे में और उच्च प्राथमिक विद्यालय (कक्षा 6 से 8) के लिए 3 किलोमीटर के दायरे में होना चाहिए। इसका उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि बच्चों को अपने आवास के पास ही शिक्षा प्राप्त हो सके। दिल्ली स्कूल शिक्षा अधिनियम (Delhi School Education Act) और नियमों (Rules), 1973 के तहत प्राथमिक (Primary) स्कूलों की दूरी से सम्बन्धित एक मानक तय किया गया

(पेज 6 पर जारी)

रणनीति की कमी की वजह से हैदराबाद में ज़ेप्टो डिलीवरी वर्कर्स की हड़ताल टूटी

गिग वर्कर्स को एक क्रान्तिकारी यूनियन के बैनर तले संगठित होना होगा

● आनन्द

ज़ेप्टो जैसी ऑनलाइन किराना कम्पनियाँ 10 मिनट में राशन और घरेलू उपयोग के सामान ग्राहकों के घर तक पहुँचाने का वायदा करती हैं। इन कम्पनियों के आने के बाद से भारत के मध्यवर्ग की ज़िन्दगी में काफ़ी सहूलियत आ गई है। अब उन्हें अपने रोज़मर्रा की ज़रूरत के सामान के लिए किराने की दुकान पर जाने की ज़रूरत नहीं होती, ये सामान अब मोबाइल पर बटन दबाते ही 10 मिनट के भीतर उनके घर के दरवाज़े तक पहुँच जाते हैं। परन्तु कम लोगों को ही इस बेरहम सच्चाई का एहसास होता है कि ज़ेप्टो कम्पनी का वायदा पूरा करने के लिए उसके डिलीवरी मज़दूरों को अपनी जान और सेहत जोख़िम में डालनी पड़ती है। एक ओर इन मज़दूरों की आमदनी में लगातार गिरावट आती जा रही है वहीं दूसरी ओर उनके काम की परिस्थितियाँ ज़्यादा से ज़्यादा कठिन होती जा रही हैं। समय पर डिलीवरी पहुँचाने की हड़बड़ी में आए दिन उनके साथ सड़क दुर्घटनाएँ होती रहती हैं। इन हालात से तंग आकर हाल ही में हैदराबाद में रामंतापुर और बोदुपल इलाक़ों में स्थित ज़ेप्टो डार्क स्टोर्स के डिलीवरी मज़दूरों ने हड़ताल पर जाने का फ़ैसला किया। डार्क स्टोर ज़ेप्टो जैसी गिग कम्पनियों द्वारा संचालित ऐसे स्टोर होते हैं जहाँ से डिलीवरी मज़दूर कोई ऑर्डर मिलने पर ग्राहक का सामान उठाते हैं।

ग़ौरतलब है कि ज़ेप्टो कम्पनी ने हाल ही एक नया पेमेण्ट रेट कार्ड लागू किया है जिसके तहत अब साप्ताहिक भुगतान की कोई गारण्टी नहीं मिलेगी। इस नई स्कीम के तहत उनका पेमेण्ट पहले से काफ़ी कम हो गया है और उनके काम के घण्टे भी बढ़ गये हैं। जहाँ पहले उन्हें एक डिलीवरी पर लगभग 35 रुपये मिलते थे, वहीं अब उन्हें मात्र 15 रुपये ही मिल रहे हैं। पुरानी पेमेण्ट योजना के तहत उन्हें लगभग 3500 रुपये के साप्ताहिक पेमेण्ट की गारण्टी मिलती थी, जिसे अब रद्द कर दिया गया है। जहाँ पहले उन्हें 10 हज़ार रुपये कमाने के लिए 210 राइड करनी पड़ती थी वहीं अब उन्हें उसी राशि के लिए क़रीब 260 राइड करनी पड़ती है। साप्ताहिक पेमेण्ट की गारण्टी के अभाव में डिलीवरी मिलने की कोई निश्चितता नहीं रह गई है। पेट्रोल और मोबाइल डेटा की बढ़ती क़ीमतों की वजह से मज़दूरों को डिलीवरी के दौरान लगा अपना ख़र्च भी निकालना ज़्यादा से ज़्यादा मुश्किल होता जा रहा है। नतीजतन, अब उन्हें अपने काम के घण्टे बढ़ाने पड़ रहे हैं जिसकी वजह से कई मज़दूरों को पीठ में दर्द की समस्या पैदा हो गई है। मज़दूरों को आराम करने की कोई समुचित व्यवस्था नहीं रहती है। उनके लिए वाशरूम तक का इन्तज़ाम नहीं होता है। डार्क स्टोर के पास एक छोटे-से और गन्दे कमरे में डिलीवरी मज़दूर रहते हैं जहाँ न तो कुर्सियाँ होती हैं और न ही लेटने की कोई व्यवस्था। वहाँ फ़र्स्ट एड बॉक्स तक भी नहीं होता है। हड़ताली मज़दूर वाशरूम और आराम करने की समुचित व्यवस्था करने की माँग भी कर रहे थे। ज्ञात हो कि ज़ेप्टो कम्पनी मज़दूरों के बीच प्रतिस्पर्द्धा बढ़ाने के लिए अपनी सभी शाखाओं में अलग-अलग पेमेण्ट और इन्सेंटिव रेट लागू करती है। ज़ेप्टो डिलीवरी मज़दूर सभी शाखाओं में समान पेमेण्ट और इन्सेंटिव की माँग भी उठा रहे थे।

ज़ेप्टो कम्पनी ग्राहकों से वायदा करती है कि वह 5 किलोमीटर की दूरी के भीतर 10 मिनट में सामान पहुँचाएगी। ज़ेप्टो पर ऑर्डर आते ही डिलीवरी मज़दूर को पहले सामान इकट्ठा करना, बाइक पर लादना और फिर ग्राहक के दरवाज़े तक पहुँचाना होता है और यह सब काम 10 मिनट के भीतर करना होता है। सामान के आकार, वजन और ऑर्डर में वस्तुओं की मात्रा के अनुसार समय में कोई छूट नहीं दी जाती है। अगर सामान पहुँचाने में देरी होती है तो चेतावनी जारी की जाती है और कई बार ऐसा होने पर उनको पेनाल्टी भी देनी पड़ती है। अगर कोई सामान क्षतिग्रस्त होता है, तो उसकी भरपाई डिलीवरी मज़दूर के पेमेण्ट से की जाती है। इस भयावह और अत्यन्त शोषणकारी कार्य स्थिति का विरोध करते हुए ज़ेप्टो डिलीवरी मज़दूर इस '10 मिनट में डिलीवरी' योजना को हटाने की माँग भी उठा रहे थे।

हड़ताल की शुरुआत से ही ज़ेप्टो कम्पनी ने डिलीवरी मज़दूरों की हड़ताल तोड़ने में कोई कसर नहीं छोड़ी। शान्तिपूर्वक हड़ताल कर रहे मज़दूरों को पुलिस द्वारा डराया-धमकाया गया। कई आन्दोलनरत मज़दूरों को काम से बर्ख़ास्त कर दिया गया। कुछ मज़दूरों से माफ़ीनामा भी लिखवाकर उन्हें काम शुरू करने के लिए मजबूर किया गया है और ज़ेप्टो के सभी स्टोर्स के मज़दूरों के बीच एकजुटता क़ायम न हो सके इसके लिए दूसरे स्टोर के डिलीवरी मज़दूरों को ज़्यादा पेमेण्ट और इंसेंटिव देकर काम पूरा करवाया गया। संघर्षरत मज़दूरों पर लगातार कॉल करके दबाव बनाया गया कि वे ड्यूटी जॉइन करें, अन्यथा उन्हें बर्खास्त कर दिया जाएगा। हड़ताल में शामिल होते ही कई मज़दूरों के आईडी काम करने बन्द हो गए।

ज़ेप्टो के संघर्षरत डिलीवरी मज़दूर 'तेलंगाना गिग एण्ड प्लेटफ़ॉर्म वर्कर्स यूनियन' नामक एक सुधारवादी यूनियन के दिशानिर्देश पर अपनी हड़ताल चला रहे थे। यह यूनियन गिग और प्लेटफ़ॉर्म मज़दूरों को एकजुट करने के नाम पर तेलंगाना की सत्तारूढ़ कांग्रेस पार्टी के लिए गिग मज़दूरों का वोटबैंक सुदृढ़ करने का काम करती है। यह मज़दूरों की वर्गीय चेतना को भोथरा करने का काम करती है। इस यूनियन की ओर से मज़दूरों के सम्मुख को कोई ठोस रणनीति और योजना प्रस्तावित नहीं की गई जिसकी वजह से हड़ताल शुरू होने के कुछ ही दिनो के भीतर संघर्षरत मज़दूरों में मायूसी और निराशा छा गई। हड़ताल से कोई नतीजा न दिखने और अपनी आजीविका का संकट गहराते देख आख़िरकार मज़दूरों को एक हफ़्ते के भीतर ही हड़ताल ख़त्म करने पर मजबूर होना पड़ा।

ज़ेप्टो के डिलीवरी मज़दूरों की समस्याएँ तमाम गिग और प्लेटफ़ार्म कम्पनियों में काम करने वाले डिलीवरी मज़दूरों की आम समस्याएँ है। उनके काम की विशिष्टता को देखते हुए उनको संगठित करना एक चुनौतीपूर्ण काम है। परन्तु क्रान्तिकारी ताक़तों को यह चुनौती उठानी होगी। इसके लिए सबसे पहले इस नए क़िस्म के काम के पीछे के राजनीतिक अर्थशास्त्र की समझदारी बनानी बेहद ज़रूरी है।

गिग और प्लेटफ़ॉर्म-आधारित अर्थव्यवस्था का राजनीतिक अर्थशास्त्र

गिग और प्लेटफ़ॉर्म-आधारित अर्थव्यवस्था डिजिटल प्लेटफ़ॉर्म के माध्यम से संचालित एक ऐसी अर्थव्यवस्था है जिसमें अस्थायी, छोटी-अवधि के और लचीले क़िस्म के काम होते हैं जिन्हें पूर्णकालिक मज़दूरों के बजाय अल्पकालिक, अस्थायी और फ़्रीलांस क़िस्म के मज़दूर करते हैं। इस अर्थव्यवस्था के तहत विविध क़िस्म के काम सम्पन्न कराये जाते हैं। इन कामों में सॉफ़्टवेयर कोड लिखने, ऑनलाइन पढ़ाने, कॉण्टेण्ट लिखने और अनुवाद करने जैसे कुशल कामों से लेकर फ़ूड डिलीवरी, राशन डिलीवरी, टैक्सी और बाइक राइड जैसे काम होते हैं जिनमें ड्राइविंग के अलावा और किसी कुशलता की ज़रूरत नहीं होती है। फ़ाइवर और अपवर्क से लेकर ऊबर, ओला, रैपिडो, ज़ोमैटो, स्विगी, ज़ेप्टो, ब्लिंकिट जैसी कम्पनियाँ गिग कम्पनियों के उदाहरण हैं। ये काम मज़दूरों के समूह के बजाय अमूमन एक व्यक्ति द्वारा सम्पन्न किये जाते हैं। इनमें मज़दूरों को किसी फ़ैक्ट्री या कार्यालय पर जाने की ज़रूरत नहीं होती है। इस तरह के काम या तो कम्प्यूटर, मोबाइल व इण्टरनेट की मदद से कहीं से भी किये जा सकते हैं, या फिर जैसाकि डिलीवरी या राइडिंग जैसे कामों में होता है, सड़कें ही मज़दूरों का कार्यस्थल होती हैं क्योंकि उनका काम चीज़ों या लोगों को एक जगह से दूसरी जगह पहुँचाना होता है। उपरोक्त वजहों से गिग मज़दूरों के लिए एकजुटता क़ायम करना मुश्किल काम होता है।

गिग अर्थव्यवस्था पूरी दुनिया में पिछले कुछ वर्षों में बहुत तेज़ी से विकसित हुई है। एक सर्वेक्षण के अनुसार अमेरिका की कुल काम करने वाली आबादी में करीब 80 प्रतिशत लोग कभी न कभी गिग अर्थव्यवस्था से जुड़े काम कर चुके हैं और इनमें से 40 प्रतिशत लोगों की आमदनी का मुख्य स्रोत ऐसे काम हैं जो गिग अर्थव्यवस्था के तहत आते हैं। भारत में भी पिछले एक दशक में इस अर्थव्यवस्था में छलाँग लगी है और बहुत बड़ी संख्या में मज़दूर गिग और प्लेटफ़ॉर्म-आधारित काम कर रहे हैं। ऐसे मज़दूरों की संख्या 2020 में ही 77 लाख थी। अब यह करीब 85 लाख तक पहुँच चुकी होगी और यह अनुमान लगाया गया है कि 2029-30 तक इनकी संख्या 2.35 करोड़ होगी। यह भारत की कुल कार्यशक्ति (मज़दूरों की तादाद) का करीब 1.5

(पेज 6 पर जारी)

गिग वर्कर्स को एक क्रान्तिकारी यूनियन के बैनर तले संगठित होना होगा

प्रतिशत है। अकेले तेलंगाना में गिग मज़दूरों की संख्या सवा चार लाख से अधिक है।

कुछ लोग ऐसे गिग व प्लेटफ़ॉर्म-आधारित कामों को पारम्परिक कामों की तुलना में बेहतर मानते हैं क्योंकि इसमें मज़दूर को स्वायत्तता होती है और उसके काम में लचीलापन होता है, काम के घण्टों की कोई बाध्यता नहीं होती है, मज़दूर अपनी ज़रूरत के मुताबिक़ काम ले सकता है और सुपरवाइज़र या मैनेजर आपके सिर पर सवार नहीं होता है और उनकी फटकार नहीं सुननी पड़ती है। परन्तु सच्चाई यह है कि यह दिखावटी लचीलापन काम की अनिश्चितता की शर्त पर आता है और छोटी-अवधि के अस्थायी कामों में पैसा इतना कम मिलता है कि मज़दूर को अपना गुजारा करने के लिए 10-12 घण्टे या उससे भी अधिक काम करने के लिए मजबूर होना पड़ता है, भले ही सतही तौर पर देखने पर लगता है कि यह मज़दूर की मर्जी पर निर्भर करता है कि वह कोई काम ले या न ले। मिसाल के तौर पर ज़ेप्टो राइडर इसके लिए बाध्य नहीं है कि वह कोई राइड चुने। परन्तु अगर उसको अपने और अपने परिवार का ख़र्चा निकालना है और अपनी बाइक के पेट्रोल तथा मोबाइल फ़ोन को डेटा सुनिश्चित करना है तो उसे कम से कम 10-12 घण्टे काम करना ही पड़ेगा क्योंकि एक राइड में उसे बमुश्किल 15-20 रुपये मिलते हैं। साथ ही प्लेटफ़ॉर्म का एल्गोरिदम ऐसा होता है कि जो मज़दूर कम राइड स्वीकार करते हैं उन्हें राइड मिलने की सम्भावना कम होती जाती है। जहाँ तक सुपरवाइज़र या मैनेजर का सवाल है तो भले ही कोई व्यक्ति भौतिक रूप से मज़दूर की निगरानी नहीं कर रहा होता है, परन्तु मोबाइल ऐप और उसकी एल्गोरिदम तथा जीपीएस के ज़रिये न सिर्फ़ उस प्लेटफ़ॉर्म की मालिक कम्पनी बल्कि उपभोक्ता भी मज़दूर की हरेक गतिविधि पर नज़र रखता है। ज़रा सी देरी पर उसके राइड से भारी रकम की कटौती कर ली जाती है और उपभोक्ताओं की डाँट-फटकार भी सुननी पड़ती है। आए दिन मीडिया में ग्राहकों और डिलीवरी मज़दूरों के बीच झड़पों की ख़बरें सुनायी देती हैं। इसके साथ ही इन डिजिटल प्लेटफ़ॉर्म्स की एल्गोरिदम में रैंकिंग और फ़ीडबैक के विकल्प होते हैं जिनके ज़रिये कम्पनी और उपभोक्ता डिलीवरी ब्वाय या राइडर्स की कार्य दशाओं, उनके व्यवहार और उनकी आमदनी पर नियन्त्रण रखते हैं। साथ ही दिन में कई-कई घण्टों तक भारी बोझ के साथ लगातार बाइक चलाने की वजह से इन मज़दूरों को शारीरिक समस्याओं को सामना करना पड़ता है और डिलीवरी समय पर पहुँचाने की हड़बड़ी में सड़क दुर्घटना का जोखिम बना रहता है।

गिग अर्थव्यवस्था में विभिन्न क़िस्म की सेवाएँ आती हैं। ये सेवाएँ एक ख़ास क़िस्म का माल ही होती हैं और उनमें तथा अन्य मालों में फ़र्क़ ये होता है कि वे ठोस भौतिक वस्तु के रूप में नहीं होती हैं और उनका उत्पादन और उपभोग अलग-अलग समयों पर नहीं बल्कि एक ही समय होता है। मिसाल के लिए ज़ेप्टो के राइडर राशन का परिवहन करने की सेवा मुहैया कराते हैं और ऊबर के ड्राइवर लोगों को एक जगह से दूसरी जगह ले जाने की सेवा उपलब्ध कराते हैं। हालाँकि इन सेवाओं के उत्पादन में लगने वाले उपकरण, मसलन ज़ेप्टो के मामले में बाइक और मोबाइल, अमूमन मज़दूरों के ख़ुद के होते हैं, फिर भी उन्हें स्वतन्त्र माल उत्पादक नहीं कहा जा सकता क्योंकि सेवा की क़ीमत, सेवा की स्थितियाँ और उसकी शर्तें गिग कम्पनियाँ तय करती हैं और उनपर मज़दूर का कोई नियन्त्रण नहीं होता है।

डिजिटल प्लेटफ़ॉर्म और उसके एल्गोरिदम की बेहद महत्वपूर्ण भूमिका होती है क्योंकि उसी के ज़रिये ही ज़ेप्टो, ज़ोमैटो, स्विगी, अर्बन कम्पनी, ऊबर, और ओला जैसी गिग कम्पनियाँ बाज़ार पर अपना क़ब्ज़ा क़ायम करती हैं और राइडरों और ड्राइवरों को अपने मातहत करती हैं। हालाँकि बाइक, और मोबाइल जैसे सेवा के उत्पादन के साधनों के मालिक अमूमन स्वयं मज़दूर होते हैं, परन्तु डिजिटल प्लेटफ़ॉर्म, मोबाइल ऐप और एल्गोरिदम जैसे अहम साधन पर कम्पनी का मालिकाना होने की वजह से गिग मज़दूर पूरी तरह से कम्पनियों के मातहत हो जाते हैं और वास्तविक रूप से उत्पादन के साधनों के मालिक कम्पनी के स्वामी ही होते हैं, भले ही औपचारिक तौर पर मज़दूर अपने ख़ुद के उपकरणों की मदद से सेवा मुहैया कराता है। ग्राहक सेवा का मूल्य प्लेटफ़ॉर्म कम्पनी को देता है और उसमें से कम्पनी मज़दूर को उसकी श्रमशक्ति का ही मूल्य देती है। मज़दूर द्वारा उत्पादित सेवा का मूल्य उसकी श्रमशक्ति के मूल्य से कहीं ज़्यादा होता है और इन दोनों मूल्यों के अन्तर यानी बेशी मूल्य को हड़पकर कम्पनी अपना मुनाफ़ा कमाती है। इस प्रकार वह मज़दूर का शोषण करती है। बाज़ार पर अपना क़ब्ज़ा करने के लिए ये गिग कम्पनियाँ तमाम तिकड़मों का भी सहारा लेती हैं। मिसाल के लिए ऊबर जैसी कम्पनी ने शुरुआत में बाज़ार पर नियन्त्रण करने के लिए राइडर्स को ज़्यादा राइड पर बोनस और ग्राहकों को छूट जैसे प्रलोभन दिये। परन्तु बाज़ार पर क़ब्ज़ा हो जाने के बाद अब राइडर्स की आमदनी और ग्राहकों को दी जाने वाली छूट दोनों में भारी कटौती हो रही है। नतीजतन, यह हो रहा है कि ऊबर, ओला आदि कम्पनियों के ड्राइवरों की आमदनी तेज़ी से घटी। शुरू में ज़्यादा मेहनताने और बोनस आदि के ज़रिये पहले उन्होंने बाज़ार पर कब्ज़ा जमाया और अब जबकि ऊबर-ओला ड्राइवर कम्पनियों के रहमो-करम पर आ गये तो उनके मेहनताने को बेहद कम कर दिया। शुरू में कई चालकों ने अपनी कारें ख़रीदकर चलवाना भी शुरू किया था। लेकिन अब रुझान उल्टा हो गया है। अब कारों का एक अच्छा-ख़ासा बेड़ा स्वयं ऊबर कम्पनी के मालिकाने में है और श्रम का यह उपकरण भी अब चालकों की विचारणीय आबादी के मालिकाने में नहीं है, बल्कि सीधे तौर पर कम्पनी की पूँजी का हिस्सा बन चुका है।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि गिग कम्पनी की भूमिका एक नियोक्ता की होती है और राइडर व ड्राइवर उस कम्पनी के ही मज़दूर होते हैं, भले ही वे औपचारिक तौर पर उत्पादन के उपकरणों के मालिक हों। परन्तु गिग कम्पनियाँ नियोक्ता की अपनी भूमिका को स्वीकार नहीं करती हैं और वे ख़ुद को महज़ 'एग्रीगेटर' कहती हैं जो बाज़ार से सूचना एकत्र करके उपभोक्ताओं और सेवा प्रदाताओं को एक प्लेटफ़ॉर्म पर लाती है। उनका दावा है कि गिग मज़दूर उनके कर्मचारी नहीं हैं बल्कि ख़ुद अपने काम के मालिक हैं, वे तो बस उपभोक्ताओं और सेवा प्रदाताओं के बीच सूचना साझा करने का अपना कमीशन लेते हैं। परन्तु उत्पादन के उपकरणों पर मज़दूरों के मालिकाने को यान्त्रिक और काग़ज़ी ढंग से देखने के बजाय अगर वास्तविक रूप में गिग कम्पनियों द्वारा गिग मज़दूरों को अपने मातहत करने की प्रक्रिया को समझा जाय तो यह बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है कि गिग अर्थव्यवस्था में राइडर या डिलीवरी जैसे काम करने वाले लोग प्रभावी रूप से मज़दूर ही हैं, भले ही उनके पास अपना ख़ुद का वाहन और मोबाइल फ़ोन हो जिनका इस्तेमाल करके वे विशिष्ट रूप की सेवा के माल का उत्पादन करते हैं। ये श्रम के उपकरण पूँजी नहीं हैं और न ही उन पर या उनके इस्तेमाल की स्थितियों पर इन मज़दूरों का कोई नियन्त्रण है, हालाँकि क़ानूनी तौर पर उन पर उनका मालिकाना है। इन मज़दूरों का शोषण करके ही गिग व प्लेटफ़ॉर्म कम्पनियाँ अपना मुनाफ़ा कमाती हैं।

ग़ौरतलब है कि हाल के वर्षों में राजस्थान और कर्नाटक में गिग श्रम को विनियमित करने के लिए जो क़ानून पास किये गये हैं उनमें भी गिग कम्पनियों और गिग मज़दूरों के बीच के रोज़गार के प्रत्यक्ष सम्बन्ध को स्वीकार नहीं किया गया है और कम्पनियों को अपने मज़दूरों के प्रति ज़िम्मेदारी से मुक्त कर दिया गया है। तेलंगाना में भी ऐसा ही क़ानून बनाने की क़वायद चल रही है जिसमें गिग मज़दूरों को मज़दूर का दर्जा देने और गिग कम्पनियों को नियोक्ता घोषित करने के बजाय कम्पनियों को गिग मज़दूरों के कल्याण के लिए कुछ ख़ैरात देने की बातें की जा रही हैं। इस क़ानून को अमली जामा पहनाने का श्रेय 'तेलंगाना गिग एण्ड प्लेटफ़ॉर्म वर्कर्स यूनियन' को जाता है जिसकी ढिलाई की वजह से ही हैदराबाद में ज़ेप्टो मज़दूरों की हड़ताल बेनतीजा रही थी। परन्तु सतही तौर पर मज़दूरों के हित में लगने वाला यह मसौदा क़ानून दरअसल गिग मज़दूरों की असल माँग यानी प्लेटफ़ार्म कम्पनियों को डिलीवरी मज़दूरों का नियोक्ता स्वीकार करने पर शातिराना चुप्पी साधे है। इस प्रकार के क़ानूनों के अस्तित्व मे आने के बाद भी गिग मज़दूर श्रम क़ानूनों की परिधि में आएँगे ही नहीं। यानी मोदी सरकार द्वारा लागू की जा रही नई श्रम संहिताओं के तहत मज़दूरों को जो बचे-खुचे अधिकार मिलेंगे, वो अधिकार भी गिग मज़दूरों को नहीं प्राप्त होंगे।

जहाँ एक ओर गिग मज़दूरों के कामों की अस्थायी प्रकृति और उनके एक साथ किसी एक कार्यस्थल पर काम न करने की वजह से ऐसे मज़दूरों को एकजुट और संगठित करने के रास्ते की अपनी चुनौतियाँ हैं, वहीं दूसरी ओर साझा समस्याओं की वजह से उनके बीच स्वत:स्फूर्त रूप से एकता का आधार भी बन रहा है। हाल के वर्षों में देश में कई जगहों पर इन मज़दूरों ने स्वत:स्फूर्त ढंग से हड़तालें की हैं और सोशल मीडिया और व्हाट्सऐप के माध्यम से एकजुटता भी क़ायम की है। क्रान्तिकारी ताक़तों को इन स्वत:स्फूर्त एकजुटता को सचेतन रूप से स्थापित की गई एकजुटता में तब्दील करना होगा। एक क्रान्तिकारी यूनियन के बैनर के तहत ही देशभर में काम करने वाले लाखों गिग मज़दूरों को एकजुट और संगठित किया जा सकता है और एक समुचित रणनीति के ज़रिये ही प्लेटफ़ार्म कम्पनियों को झुकाया जा सकता है।

भ्रष्टाचार की भेंट चढ़ा दिल्ली के शाहबाद डेरी इलाके का उच्च माध्यमिक विद्यालय

(पेज 4 से आगे)

है। इसका उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि बच्चों को स्कूल तक पहुँचने के लिए लम्बी दूरी तय न करनी जिससे ड्रॉपआउट्स को कम किया जा सके। बच्चों को शिक्षा का मूलभूत अधिकार देने के लिए, यह दूरी का मानक "Right to Education Act (RTE), 2009" में भी दोहराया गया है, जिसके अनुसार प्राथमिक विद्यालय का अधिकतम दूरी 1 किलोमीटर और उच्च प्राथमिक विद्यालय (Upper Primary, कक्षा 6-8) का अधिकतम दूरी 3 किलोमीटर होना चाहिए। लेकिन इन नियमों को मोदी के मृतकाल में किस प्रकार धज्जियाँ उड़ायी जा रही हैं, ये सभी के सामने है।

समान एवं निःशुल्क शिक्षा हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है

शिक्षा का अधिकार जीने के अधिकार के साथ जुड़ा हुआ है। समान और निःशुल्क शिक्षा हर बच्चे का जन्मसिद्ध अधिकार है। अगर हम आज शिक्षा के क्षेत्र में जारी ग़ैरबराबरी के ख़िलाफ़ आवाज़ नहीं उठायेंगे, तो अपने बच्चों के भविष्य के बरबाद होने के ज़िम्मेदार हम भी होंगे। याद रखें कि चुप्पी अन्याय करने वालों के लिए एक मौन समर्थन होता है। जिस तरह से हम ज़िन्दगी भर एक जगह से दूसरी जगह काम के लिए भागते रहते हैं, अगर आज हम नहीं बोलेंगे, तो हमारे बच्चे भी वैसी ही ज़िन्दगी जीने के लिए मजबूर होंगे।

हमें बच्चों के भविष्य को बर्बाद होने से बचाने के लिए एकजुट होकर लम्बी लड़ाई की तैयारी करनी होगी। साथ ही इस सवाल पर भी इत्मीनान से सोचना होगा कि यदि सरकार लोगों को स्तरीय शिक्षा, रोजगार, चिकित्सा और आवास जैसी बुनियादी चीजें नहीं दे सकती है तो वह किसलिए है? क्या सिर्फ कॉरपोरेट घरानों और पूँजीपतियों की सेवा के लिए? हमें अपने अधिकारों को लेने के लिए एकजुट होकर संघर्ष करना ही होगा। भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी द्वारा शाहबाद डेरी के पूरे इलाक़े में और अन्य जगहों पर 'स्कूल बचाओ बच्चों के भविष्य को बचाओ' अभियान चलाया जा रहा। शाहबाद डेर के इलाके के विधायक के अलावा डिपार्टमेण्ट ऑफ एजुकेशन और शिक्षा मन्त्रालय को मज़दूर पार्टी ने जनता का माँगपत्रक सौंपा है। मज़दूर पार्टी के प्रवक्ता ने कहा कि 'इसके अलावा हम डेरी के लोगों को एकजुट और संगठित होकर 'स्कूल बचाओ बच्चों के भविष्य को बचाओ' अभियान को एक जनआन्दोलन में तब्दील करना होगा ताकि न सिर्फ बच्चों के लिए स्कूल की व्यवस्था की जा सके बल्कि डेरी में जो स्कूलों की स्थिति है उसमें भी बदलाव लाया जा सके।'

तेलंगाना की फ़ार्मा-केमिकल फ़ैक्ट्री में भीषण आग

मालिक के मुनाफ़े की भट्ठी में जलकर ख़ाक हो गये 52 मज़दूर

● हैदराबाद संवाददाता

तेलंगाना के संगारेड्डी ज़िले में स्थित सिगाची फ़ार्मा-केमिकल फ़ैक्ट्री के मज़दूर गत 30 जून की सुबह जब हर रोज़ की तरह फ़ैक्ट्री की पहली शिफ़्ट में काम करने जा रहे थे तो उन्हें यह अन्दाज़ा भी नहीं था कि वे मौत के मुँह में जा रहे हैं। जिस फ़ैक्ट्री में वे रोज़ हाड़तोड़ मेहनत करके मालिक के मुनाफ़े की ख़ातिर रसायन बनाते थे वही फ़ैक्ट्री उस दिन एक मौत की भट्ठी साबित होने वाली थी। फ़ैक्ट्री में काम शुरू होते ही क़रीब 9 बजे अचानक एक भीषण विस्फोट हो जाता है जिसकी आवाज़ कई किलोमीटर दूर तक सुनायी दी। धमाका इतना तेज़ था कि उसकी वजह से कई मज़दूर 100 मीटर की दूरी तक जा गिरे। देखते ही देखते फ़ैक्ट्री की तीन मंज़िला इमारत मलबे के ढेर में तब्दील हो गई। इस मलबे में फ़ैक्ट्री में काम करने वाले दर्जनों मज़दूरों के शरीर कुछ इस तरह से गुम हो गये कि उनकी पहचान करना मुश्किल था। मज़दूरों के जले-कटे और क्षत-विक्षत शरीर के हिस्सों की डीएनए जाँच के बाद ज़िला प्रशासन ने 10 जुलाई तक 44 मज़दूरों की मौत की पुष्टि की। परन्तु अभी भी 8 मज़दूरों का कहीं कोई अता-पता नहीं है। इसके अलावा क़रीब 34 मज़दूर गम्भीर रूप से ज़ख़्मी हैं और उनका इलाज़ विभिन्न अस्पतालों में चल रहा है। इस हादसे ही भयावहता को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि यह तेलंगाना ही नहीं देश की सबसे भीषण औद्योगिक दुर्घटनाओं में से एक है। हर ऐसी दुर्घटना की ही तरह प्रधानमन्त्री से लेकर मुख्यमन्त्री तक ने ट्वीट के ज़रिये घड़ियाली आँसू बहाए और हर बार की ही तरह आर्थिक मुआवज़े की घोषणा करके इतने बड़े पैमाने पर मज़दूरों की मौत के लिए किसी भी प्रकार की जवाबदेही से किनारा कर लिया गया है।

प्रारम्भिक जाँच के अनुसार, विस्फोट एक बड़े स्प्रे ड्रायर में हुआ जिसका उपयोग माइक्रोक्रिस्टलाइन सेल्युलोज़ (एमसीसी) नामक रसायन के उत्पादन के लिए किया जाता है जिससे कई क़िस्म की दवाएँ बनायी जाती हैं। स्प्रे ड्रायर के ज़रिये एक रासायनिक घोल को पाउडर में तब्दील किया जाता है। इस ड्रायर के भीतर बड़े-बड़े पंखे लगे होते हैं, जिनके ज़रिये तापमान को नियन्त्रित किया जाता है। लेकिन कम्पनी में नियमित रखरखाव की कमी के कारण इन पंखों ने काम करना बन्द कर दिया, जिससे तापमान में तेज़ और अनियन्त्रित वृद्धि हुई, जो 700 डिग्री सेल्सियस से भी अधिक पहुँच गया जिसकी वजह से यह भीषण हादसा हुआ। 'द हिन्दू' अख़बार में प्रकाशित एक रिपोर्ट के अनुसार हादसे में मारे गये एक मज़दूर के बेटे ने संगारेड्डी पुलिस के पास एफ़आईआर किया है कि उसके पिता और कई अन्य मज़दूरों ने कई बार उपकरण की ख़राब हालत की शिकायत कम्पनी से की थी, लेकिन फिर भी कम्पनी की ओर से कोई क़दम नहीं उठाया गया। इससे स्पष्ट है कि कम्पनी के मालिक और शीर्ष प्रबन्धन सीधे तौर पर मज़दूरों की मौत के लिए ज़िम्मेदार हैं और ये मुनाफ़े की हवस मे की गई निर्मम हत्याएँ हैं। पूँजीवाद जो मुनाफ़े की हवस पैदा करता है उसको पूरा करने के लिए ही मज़दूरों की बलि चढ़ाई गई है।

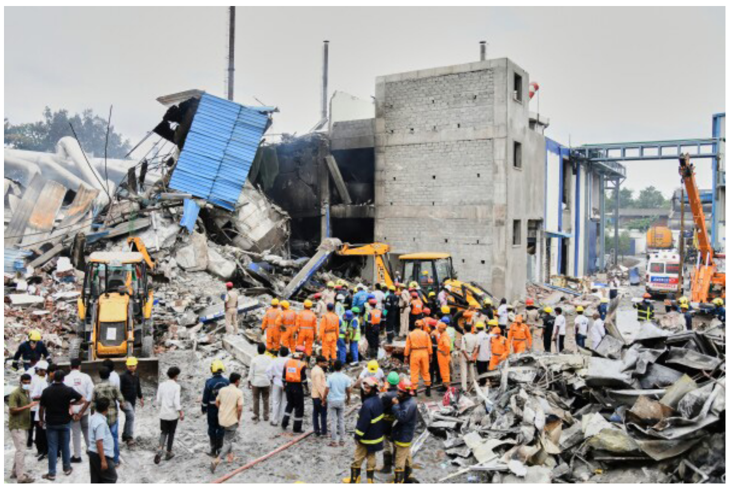

ग़ौरतलब है कि सिगाची इण्डस्ट्रीज़ देश में एमसीसी के सबसे बड़े उत्पादकों में से एक है, जिसकी फ़ैक्ट्रियाँ तेलंगाना के अलावा गुजरात में भी स्थित हैं। तेलंगाना की फ़ैक्ट्री दुर्घटना के बाद 90 दिनों के लिए बन्द कर दी गई है और उत्पादन के लक्ष्यों को पूरा करने के लिए गुजरात की दो फ़ैक्ट्रियों में उत्पादन बढ़ा दिया गया है जिसका नतीजा कम्पनी की गुजरात स्थित दो फ़ैक्ट्रियों में मज़दूरों पर बढ़ते कार्य दबाव के रूप में सामने आएगा। ज्ञात हो कि तेलंगाना के पाटनचेरू औद्योगिक क्षेत्र के पशमिलारम एस्टेट में स्थित इस कम्पनी की फ़ैक्ट्री में आग लगने की यह कोई पहली घटना नहीं थी। सितंबर 2019 में भी इसी फ़ैक्ट्री में एक तकनीकी त्रुटि की आग लगी थी, जिसमें बहुत ज़्यादा आर्थिक नुक़सान हुआ था। इसके अलावा एक सुरक्षा निरीक्षण रिपोर्ट के अनुसार 30 जून के विस्फोट से कुछ महीने पहले ड्रायर यूनिट में आग बुझाने की यन्त्र, सुरक्षात्मक उपकरणों, और इमरजेंसी एग्ज़िट की कमी सामने आई थी। बाद में कम्पनी ने एक अनुपालन रिपोर्ट भी जमा की, लेकिन उसके बाद कोई निरीक्षण नहीं किया गया। यह तथ्य प्रमाणित करता है कि इस फ़ैक्ट्री के मालिकान और प्रबन्धन से कोई पूछने वाला कोई नहीं है कि वे कैसे अपने मनमर्ज़ी से मज़दूरों की जान जोख़िम में डालकर मुनाफ़ा कमा रहे हैं।

हैदराबाद की परिधि पर स्थित मौत और मायूसी के कारख़ाने

हैदराबाद शहर अपनी चमक-दमक और ऐतिहासिक इमारतों के लिए जाना जाता है। लेकिन, कम लोग ही इस चकाचौंध के पीछे छिपी मज़दूरों की अँधेरी दुनिया की बेरहम सच्चाई से वाक़िफ़ हैं। इस शहर की परिधि पर पुराने और नये औद्योगिक क्षेत्रों का जाल-सा बिछा हुआ है जिनमें मज़दूरों की ज़िन्दगी से खेलकर मुनाफ़ा कमाने का धन्धा दिन-रात बेरोकटोक चलता रहता है। शहर के केन्द्र से क़रीब 50 किमी दूर उत्तर-पश्चिमी दिशा में तेलंगाना के संगारेड्डी ज़िले में स्थित पाटनचेरू औद्योगिक क्षेत्र में फ़ार्मा और केमिकल कम्पनियों की भरमार है। यह क्षेत्र औद्योगिक दुर्घटनाओं के लिए कुख्यात है। यहाँ आए दिन आग लगने और बॉयलर फटने जैसी दुर्घटनाएँ होती रहती हैं। फिर भी मज़दूरों की सुरक्षा को लेकर शासन-प्रशासन का उदासीन रवैया बदलने का नाम नहीं लेता। इन बेरहम रहनुमाओं के लिए मज़दूरों की ज़िन्दगी का कोई मोल नहीं है। सिगाची फ़ैक्ट्री में विस्फोट के समय फ़ैक्ट्री परिसर में लगभग 150 मज़दूर मौजूद थे, जिनमें ज़्यादातर उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश, ओडिशा और पश्चिम बंगाल से आने वाले प्रवासी मज़दूर थे। प्रवासी मज़दूरों के प्रति सरकारी अमला और भी ज़्यादा उदासीन और उपेक्षापूर्ण रहता है। ग़ौरतलब है कि तेलंगाना के औद्योगिक क्षेत्रों में औसतन हर दो दिन में एक अग्निकाण्ड होता है। सिगाची फ़ैक्ट्री में हुए विस्फोट के अगले ही दिन मेडचल स्थित एक फ़ैक्ट्री में एक बॉयलर फट गया, जिसमें एक मज़दूर की मौत हो गई।

आधिकारिक आँकड़ों के अनुसार, वर्ष 2021–2022 के दौरान तेलंगाना के औद्योगिक क्षेत्रों में 600 से अधिक दुर्घटनाएँ दर्ज की गई; जिनमें से अधिकांश हैदराबाद के निकट स्थित जीडीमेटला, आईडीए बोलारम, पशमिलारम और पाटनचेरू जैसे औद्योगिक इलाक़ों में हुई। दुर्घटनाओं के लिहाज़ से, तेलंगाना ने वर्ष 2021 से 2023 के बीच फ़ैक्ट्रियों, गोदामों आदि में आग लगने से जुड़ी घटनाओं में 1100 से ज़्यादा मौतें हुई थीं। ग़ौरतलब है कि ये आँकड़े सिर्फ़ पंजीकृत फ़ैक्ट्रियों के हैं। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि अनौपचारिक क्षेत्र में हुई उन दुर्घटनाओं में कितनी मौतें होती होंगी जिनका कोई रिकॉर्ड नहीं होता। इसी वर्ष जनवरी–फ़रवरी में ही प्रदेश में 55 औद्योगिक दुर्घटनाएँ दर्ज की गई। पिछले दो वर्षों में हैदराबाद की परिधि में स्थित छह प्रमुख औद्योगिक क्षेत्रों में 125 दुर्घटनाएँ हुई हैं, जिनमें 133 लोगों की जान गई और 350 से अधिक लोग गम्भीर रूप से घायल हुए हैं।

तेलंगाना में रेवन्त रेड्डी नीत कांग्रेस सरकार देशी-विदेशी पूँजीपतियों को रिझाने के लिए 'ईज़ ऑफ डूइंग बिज़नेस' (धन्धा करने की सहूलियत) के नाम पर उन्हें भाँति-भाँति के प्रलोभन दे रही है। रेवन्त रेड्डी पूँजीपतियों को यह यह आश्वासन देते आए हैं कि उनके राज्य में भाजपा शासित राज्यों के मुक़ाबले लूट-खसोट के ज़्यादा मौक़े मुहैया कराएगी। परन्तु राज्य में बढ़ती औद्योगिक दुर्घटनाएँ सरकार की मज़दूर-विरोधी नीतियों की कलई खोलकर रख देती हैं। मालिकों को लूट व शोषण की खुली छूट देने के लिए सुरक्षा मानकों को कमज़ोर किया जा रहा है और सरकारी निगरानी को बिल्कुल ही ढीला किया जा रहा है, ताकि पूँजीपतियों को अधिक मुनाफ़ा कमाने का अवसर दिखाकर रिझाया जा सके। इसका सीधा नतीजा यह हुआ है कि कार्यस्थल की परिस्थितियाँ बेहद ख़तरनाक हो गई हैं, जिसका प्रमाण हमें औद्योगिक दुर्घटनाओं में आई बढ़ोतरी में मिलता है। सरकारी आँकड़ों के मुताबिक तेलंगाना में 4130 उच्च-जोखिम वाली फ़ैक्ट्रियाँ हैं, परन्तु सुरक्षा मानकों को सुनिश्चित करने के लिए प्रदेश में मात्र 20 इंस्पेक्टर और ज्वाइंट इंस्पेक्टर हैं। नतीजतन फ़ैक्ट्रियों का निरीक्षण बमुश्किल साल-दो साल में एक बार हो पाता है। ग़ौरतलब है कि ग़ैर-क़ानूनी रूप से चलने वाली फ़ैक्ट्रियाँ इन आँकड़ों में नहीं शामिल हैं।

हैदराबाद और इसके आसपास के क्षेत्रों में कई फ़ार्मास्युटिकल और केमिकल फ़ैक्ट्रियाँ पिछले तीन से चार दशकों से संचालित हो रही हैं, जो अब भी पुरानी और जर्जर मशीनों पर निर्भर हैं, और उनमें से अधिकांश अपनी निर्धारित कार्य-आयु पार कर चुकी है। ये मशीनें आधुनिक सुरक्षा सुविधाओं जैसे इण्टरलॉक्स, सेंसर्स और इमरजेंसी शटडाउन सिस्टम से लैस नहीं हैं, जिससे वे मेकैनिकल फ़ेल्योर और प्रेशर वृद्धि के प्रति बेहद संवेदनशील हो जाती हैं, जो विस्फोट का कारण बन जाते हैं। अधिक मुनाफ़े की लालसा में कई कम्पनियाँ अप्रशिक्षित कर्मचारियों से जटिल और जोख़िम भरे काम करवाती हैं, जिससे दुर्घटनाओं की सम्भावना और भी बढ़ जाती है। इसके अलावा, महत्वपूर्ण सुरक्षा उपकरण जैसे तापमान और दबाव अलार्म, जो सम्भावित ख़तरों के प्रति ऑपरेटरों को चेतावनी दे सकते हैं, अक्सर प्रमुख निगरानी स्थलों — जैसे कि शिफ़्ट-इनचार्ज की डेस्क — पर लगाए ही नहीं जाते। यह जानबूझकर की गई उपेक्षा उत्पादन की लागत कम करने की एक रणनीति है, जो मज़दूरों की सुरक्षा को गम्भीर रूप से ख़तरे में डालती है।

जैसाकि हर औद्योगिक दुर्घटना के बाद होता है, सिगाची फ़ैक्ट्री में विस्फोट की ख़बर मीडिया में फैलते ही सरकारी अमला हरकत में आ गया। मीडिया में बाइट देने के लिए नेता-मन्त्रियों ने घटना स्थल पर दौरा करना शुरू कर दिया। राज्य सरकार ने फ़ौरन जाँच आयोग गठित करके मामले को रफ़ा-दफ़ा करने का पूरा इन्तज़ाम कर लिया है। मृत मज़दूरों के परिजनों के ग़ुस्से को ठण्डा करने के लिए उनको आर्थिक मुआवज़ा देने का आश्वासन भी दे दिया गया है, हालाँकि मज़दूरों के परिजनों को अभी भी सही जानकारी पाने के लिए दर-दर भटकना पड़ रहा है। मीडिया के कैमरे भी अब इलाक़े से जा चुके हैं। इस बीच पाटनचेरू की फ़ैक्ट्रियों के मालिकों के मुनाफ़े की मशीनरी बदस्तूर जारी है और सिगाची फ़ैक्ट्री में मारे गये मज़दूरों की चीखें मशीनों की आवाज़ के सामने दब चुकी हैं।

जो हालात तेलंगाना के हैं कमोबेश वही हालात देश के अन्य हिस्सों के भी हैं। सरकारी आँकड़ों के मुताबिक, पिछले 10 वर्षों में भारत में 269 से अधिक केमिकल फ़ैक्टरियों, कोयला खदानों और निर्माण स्थलों पर बड़े औद्योगिक हादसे हुए हैं। इन सभी हादसों की जड़ में मुनाफ़े पर टिकी पूँजीवादी व्यवस्था ही है। ये बढ़ती औद्योगिक दुर्घटनाएँ पूँजीवाद के मानवद्रोही चरित्र को सरेआम उजागर कर देती हैं। आज मज़दूरों के सामने सवाल यह है कि वे आख़िर कब तक पूँजीपतियों के मुनाफ़े की भट्ठी में झोंके जाने को बर्दाश्त करते रहेंगे? इससे पहले कि पूँजीवाद हमारी ज़िन्दगी और हमारे सपनो को जलाकर ख़ाक कर दे हमें पूँजीवाद को ख़ाक में मिलाने के लिए कमर कसनी होगी।

बारिश ने उजागर की "स्मार्ट सिटी" की हक़ीक़त

न स्वच्छता अभियान की नौटंकी, न नेताओं-मन्त्रियों की जवाबदेही — हर बार की तरह मज़दूर और मेहनतकश तबका ही भुगत रहा है!

● आशु

अभी हाल में उत्तर भारत में हुई तेज़ बारिश ने एक बार फिर सरकार और प्रशासन के सारे दावों की पोल खोल दी। दिल्ली, हरियाणा, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, पंजाब जैसे राज्यों के तमाम शहरों में जलभराव, सीवर जाम, टूटी सड़कें, और सड़ते पड़े कूड़े के ढेर एक भयानक हकीकत बनकर हमारे सामने हैं। दिल्ली एनसीआर से लेकर रोहतक, हिसार, गुड़गाँव जैसे कई क्षेत्रों में तो स्थिति इतनी बदतर हो गई कि घरों और दुकानों में गन्दा पानी भर गया। गलियों में चलना मुश्किल हो गया, बीमारियों ने दस्तक दी और मज़दूर तबका, जो पहले ही महँगाई और बेरोजगारी की मार झेल रहा है, अब स्वास्थ्य और आवागमन की परेशानी से भी जूझ रहा है।

झूठे वायदों की सड़ाँध और गन्दे नालों की बदबू

यूँ तो मोदी सरकार हर साल "स्वच्छ भारत मिशन" और "स्मार्ट सिटी" का ढोल पीटती हैं। कागज़ों में करोड़ों रुपये ख़र्च दिखाये जाते हैं। अखबारों और टीवी चैनलों में चमचमाते विज्ञापन चलते हैं। लेकिन ज़मीनी हालात क्या हैं? एक बारिश आई और दिल्ली के कुलीन इलाकों से लेकर हरियाणा के छोटे शहरों तक, सबकी पोल खुल गई। जगह-जगह भरे नालों से बदबू मारता पानी सड़क पर बहने लगा। अस्पतालों में मलेरिया, डेंगू, टाइफाइड, पीलिया जैसे संक्रमणों के मरीज़ बढ़ गए। अमीरज़ादों के इलाकों में तो सरकार फिर भी तात्कालिक तौर पर कुछ इन्तज़ाम करने की क़वायद करती है, लेकिन मेहनतकश आबादी के इलाकों का कोई नामलेवा नहीं होता और आम जनता को जलभराव और गन्दगी से पैदा होने वाली बीमारियों और संक्रमणों से मरने के लिए छोड़ दिया जाता है।

इन हालात में सबसे ज़्यादा मार उस वर्ग पर पड़ी है, जो हर रोज़ सुबह 5 बजे उठकर काम की तलाश में, या कारखानों, दफ़्तरों, दुकानों पर काम तक पहुँचने के लिए निकलता है — **मज़दूर वर्ग।** फुटपाथ पर रहने वाला, झुग्गियों में गुजर-बसर करने वाला, ईंट-भट्ठों और फ़ैक्टरियों में काम करने वाला, सफाई कर्मचारी, निर्माण मज़दूर, रेहड़ी-पटरी चलाने वाला, इन सबके लिए ये बारिश आफ़त बनकर आई है। जिन झुग्गियों में वे रहते हैं, वहाँ सीवर व्यवस्था नाम की कोई चीज़ नहीं। न कोई निकासी का प्रबन्ध है, न कोई प्राथमिक स्वास्थ्य सुविधा। इसका नतीजा क्या होता है, ये हम मज़दूर जानते हैं। हमें इसी गन्दगी में पशुवत पड़े रहने के लिए छोड़ दिया जाता है, हालाँकि हमारे समाज के धनाढ्य वर्गों की समृद्धि की इमारतें हमारे श्रम की नींव पर ही खड़ी होती हैं।

कौन लेगा ज़िम्मेदारी?

हर बार की तरह इस बार भी जब पानी सिर के ऊपर चढ़ गया, तब कहीं जाकर प्रशासन हरक़त में आया, नेताओं की नींद खुली। नेताओं ने एक-दो जगह दौरा किया, कैमरे में पोज़ दिया और चले गए। कुछ जगह पर पानी निकालने के लिए दमकल या मोटरें लगाई गईं, लेकिन ज़्यादातर इलाकों में मज़दूर वर्ग को ख़ुद ही अपनी गलियों और घरों से पानी बाल्टियों से निकालना पड़ा। **सवाल यह है कि हर बार जनता ही क्यों ढोती रहे प्रशासन की नाकामी और असंवेदनशीलता का बोझ?** क्या सड़कों की मरम्मत, सीवरेज सिस्टम की सफ़ाई, और कूड़ा निस्तारण की जिम्मेदारी मज़दूरों की है? क्या करोड़ों रुपये टैक्स के रूप में देने के बावजूद जनता को हर बार अपनी समस्या ख़ुद सुलझानी होगी? यह काम सरकार का है। लेकिन जनता से वसूले जा रहे डकैती टैक्सों जैसे जीएसटी व पेट्रोलियम उत्पादों पर लगे टैक्सों के ज़रिये जुटाये जा रहे लाखों करोड़ रुपयों को तो पूँजीपतियों को तमाम छूटें और रियायतें देने, नेताओं-नौकरशाहों की ऐय्याशियों, सुरक्षा आदि पर उड़ा दिया जाता है। तो फिर जनता की बुनियादी सुविधाओं पर ख़र्च करने के लिए सरकार के पास धन बचेगा कहाँ से!

स्वच्छता का ढोंग और ज़मीनी हक़ीकत

जब चुनाव आते हैं, तो हर पार्टी स्वच्छता, जलनिकासी, और सुन्दर शहरों की बातें करती है। लेकिन सत्ता में आते ही ये मुद्दे गायब हो जाते हैं। कई जगहों पर सांसद-विधायक वर्षों से एक ही व्यक्ति हैं, लेकिन इलाके की हालत जस की तस बनी हुई है। फिर सवाल उठता है — क्या स्वच्छ भारत का सपना केवल विज्ञापन एजेंसियों और ठेकेदारों

(पेज 9 पर जारी)

देश के विकास में बारिश का योगदान!

● अन्वेषक

बारिश का मौसम आ गया है। काम से फ़ुरसत पाकर छुट्टी के दिन शहर के मध्यवर्ग के लोग-बाग बालकनी में बैठकर आराम से पकौडे खाते-खाते चाय पीते हुए बारिश का आनन्द ले रहे हैं। आसमान काले बादलों से घिरा हुआ है। पेड़ों पर साफ़-सुथरी हरियाली छा गयी है और पंछी चारों ओर चहचहा रहे हैं। बिजली की गर्जना सुनकर मन शान्त है। लगने लगता है यही तो है जीवन का सार। बारिश का मौसम आते ही ज़िन्दगी थोड़ी अच्छी लगने लगती है। भयंकर गर्मी से छुटकारा पाकर लोग थोड़ा सुकून महसूस करते है। तभी तो बरसात के मौसम का साहित्यों से लेकर फिल्मों तक में इतना महिमामण्डन किया गया है। कालीदास से लेकर गली के कवियों तक ने प्राचीन और मध्यकाल से लेकर आधुनिक काल तक मेघा के इन्तज़ार में पन्ने के पन्ने भर दिये हैं। पुरानी फिल्मों से लेकर आज तक, उस समय ही थियेटर में सबसे ज़्यादा तालियाँ बजती हैं, जब बारिश में ही नायक-नायिका रोमांस करते हैं। पर बारिश सिर्फ़ इन्सानों के जीवन में बहार नहीं लाती, बल्कि यह देश की अर्थव्यवस्था में भी जान ला देती है और उसे आगे बढ़ाने में अपना योगदान देती है। आप सोच रहे होंगे भला बारिश से देश की अर्थव्यवस्था कैसे आगे बढ़ सकती है! हाँ भाई बिल्कुल बढ़ सकती है! आइये आपको थोड़ा विस्तार से समझाता हूँ।

बरसात के मौसम के साथ ही शुरूआत होती है सड़क में गढ्ढे बनने और उसके धँसने की। इसी मौसम में पुल गिरते हैं, पुरानी इमारतें गिरती हैं, पेड़-खम्भों से लेकर न जाने क्या-क्या गिर जाता है। आप सोच रहे होंगे बात तो ठीक है, पर इससे देश की अर्थव्यवस्था का आगे बढ़ने से क्या लेना-देना है! महोदय! देश की विकास को समझने में, यही तो आप चूक गये! अब देखिए, जब कोई सड़क टूटती है या उसमें गढ्ढे बन जाते हैं, तो इसके बाद क्या होता है? इसके बाद अगले साल सरकार सड़क की मरम्मत के लिए नया टेण्डर निकालती है। कोई बड़ी कम्पनी सबसे अधिक पैसा देकर टेण्डर ख़रीदती है। फिर कम्पनी ठेकेदार नियुक्त करती है। ठेकेदार मज़दूरों को काम पर रखता है। फिर दुबारा नयी सड़क बनकर तैयार होती है। इसके बाद मोदीजी या माननीय मुख्यमन्त्री सड़क का उद्घाटन करने आते हैं। यानी सड़क के टूटने के कारण ही कम्पनी को टेण्डर मिला, ठेकेदार को सड़क बनाने के लिए ठेका मिला, मुनाफ़ा मिला और इससे ही मज़दूरों को 2-3 महीने के लिए काम मिला और अपना शोषण करवाने का अधिकार प्राप्त हो पाया और अन्त में सरकार को भी जनता के हित में किये गये काम को दिखाने का मौक़ा मिला। ठेका देने-दिलाने की प्रक्रिया में भी बहुत-कुछ हुआ, जिस पर हम बात नहीं करेंगे, लेकिन उनसे भी देश का विकास ही होता है, यह तो सभी जानते हैं। बहरहाल, तब आप भी ख़ुश हो जाते हैं कि चलो नयी सड़क बन गयी। अब आप ही बताइए अगर बारिश नहीं होती और बारिश से सड़क नहीं टूटती तो क्या इतने सारे लोगों का भला हो पाता? क्या आप नयी सड़क का आनन्द उठा पाते? क्या मोदी जी या योगी जी भगवा झण्डों के साथ हाथ हिलाते हुए कैमरों के सामने उसका उद्घाटन कर पाते?

सिर्फ़ इतना ही नहीं, बारिश के कारण देश में विकास के और भी काम होते हैं। अब मान लीजिए कि आप साइकिल या बाइक से बारिश के मौसम में कहीं जा रहे हैं, अचानक एक गढ्ढा आता है, जो बारिश के पानी से लबालब भरा है और वह आपको दिखाई नहीं देता। आप अपनी साइकिल या बाइक उसी गढ्ढे में घुसा देते हैं। ज़ाहिर सी बात है, आपको चोट आयेगी या आप दैहिक-दैविक ताप से मुक्ति पाकर परलोक प्रस्थान करेंगे। अगर आपको चोट आती है तो तब आप भागे-भागे अस्पताल जायेंगे या ले जाये जायेंगे। मैं मानकर चल रहा हूँ कि आप ऐसे समय में सरकारी अस्पतालों में जाकर धक्के खाना पसन्द नहीं करेंगे और किसी प्राईवेट अस्पताल की ओर रुख़ करेंगे, अगर आपकी उधार लेने लायक भी औक़ात हुई तो। वहाँ जाकर आप मरहम-पट्टी करायेंगे और डॉक्टर जो दवाइयाँ लिखकर देगा, वह भी ख़रीदेंगे। अब आप बाइक के साथ गिरे हैं, तो आपको बाइक भी तो ठीक करवानी होगी। इसके लिए आप सर्विस सेण्टर जायेंगे। वहाँ भी जाकर आप उन्हें बाइक ठीक करने के लिए पैसे देंगे। यानी आप सड़क के गढ्ढे में गिरकर, प्राईवेट अस्पताल को पैसा देकर, सर्विस सेण्टर को पैसा देकर देश के विकास में ही तो योगदान दे रहें हैं! इससे आप देश की अर्थव्यवस्था को आगे बढ़ाने में ही मदद कर रहे हैं! मान लें अगर आप मर ही गये, तो इसे "राष्ट्र" के विकास में योगदान मानिये! एक तो जनसंख्या कम करने में आपका योगदान होगा, ऊपर से आपके क्रिया-करम की प्रक्रिया में भी बहुत-से भले मानुषों का भला हो जायेगा, जैसे मरघट्टे पर लकड़ी व क्रिया-करम का सामान बेचने वाले व्यापारी, मन्त्र पढ़ने वाले पण्डित, शव-वाहन सेवा का मालिक, आदि-आदि। जो भी हो, देश के विकास में आपका बारिश के मौसम में वैविध्यपूर्ण तरीके से योगदान हो सकता है। अब ज़रा सोचिये : आपके गढ्ढे में गिरने से ही तो अर्थव्यवस्था को फ़ायदा हुआ! यह सब बारिश के कारण ही तो सम्भव हो पा रहा है!

अगर बारिश नहीं होगी तो सरकार, कम्पनी, ठेकेदार, अस्पताल, सर्विस सेण्टर सबका नुक़सान होगा। इससे फिर हमारा 5 ट्रिलियन इकॉनोमी बनने का सपना, सपना ही रह जायेगा। इसमें भी कई से लोग बोलने आ जायेंगे कि सड़क, पुल वगैरह तो सब एक बार में ही अच्छे बनाने चाहिए ताकि वह सालों-साल चले। पर ऐसे लोग देश के विकास के बारे में नहीं सोचते! उन्हें देश की अर्थव्यवस्था से कोई लेना-देना नहीं है! अगर सरकार एक ही बार में अच्छी सड़क बनवा देगी, फिर मोदीजी और तमाम माननीय मुख्यमन्त्री लोग बार-बार उद्घाटन किसका करेंगे? जब वह वोट माँगने जायेंगे, तो लोग ही कहेंगे कि वो सड़क तो कई साल पहले की बनी है। कम्पनी हर साल उसी सड़क को बनाने का नया टेण्डर कैसे लेगी? ठेकेदार सीमेन्ट-रोड़ी कम लगाकर अपना कमीशन कैसे बढ़ायेगा? सबसे ज़रूरी बात कि आपके दिल को तसल्ली कैसे मिलेगी, कि आपके यहाँ नयी सड़क बनी है? यानी कोई सड़क सालों-साल सही-सलामत चल जायेगी, उसकी नियमित तौर पर मरम्मत वगैरह होगी, उसमें गढ्ढे नहीं होंगे तो हमारी देश की अर्थव्यवस्था ठप्प नहीं पड़ जायेगी! अब आप बताइये कि बारिश का हमारी देश की अर्थव्यवस्था को आगे बढ़ाने में योगदान है या नहीं? इसलिए आज से आप टूटी हुई सड़क को देखकर शिकायतें करना बन्द कर दीजिए और शान से इसके फ़ायदे के बारे में सबको बताइये और कभी मौक़ा मिले तो गढ्ढों से रूबरू होकर अपना एक्सीडेण्ट भी करवाइये ताकि देश की अर्थव्यवस्था को आगे बढ़ाने में आप भी योगदान दे सकें। आख़िर बरिश का मौसम सिर्फ़ चाय-पकौड़े खाने के लिए थोड़े ही है, ये तो देश के विकास का मौसम है।

भाजपा के रामराज्य में बढ़ते दलित-विरोधी अपराध

● अदिती

2014 में फ़ासीवादी भाजपा सरकार के सत्ता में आने के बाद जातिगत उत्पीड़न की घटनाओं की बाढ़ सी आ गयी है। दलित विरोधी अपराध बर्बरता की सारी हदें पार करते जा रहे हैं। ऐसा कोई दिन नहीं जाता, जब दलितों के साथ जातिवादी गुण्डों द्वारा हिंसा की घटना सामने न आती हो। देश भर में दलितों के ख़िलाफ़ होने वाले उत्पीड़न और शोषण की घटनाएँ इतिहास में एक ख़ून सने पन्ने की तरह दर्ज हो गयी हैं। आइए एक बार नज़र डालते हैं, हालिया दलित विरोधी घटनाओं पर। बीते कुछ समय में जातिगत उत्पीड़न की कुछ दर्ज हुई प्रातिनिधिक घटनाएँ ये हैं :

• जून 2024, में मध्य प्रदेश के छतरपुर जिले में एक दलित युवक की निर्वस्त्र कर पिटायी करने और सिगरेट से दागने का मामला सामने आया है।

• मई 2025, में मुजफ़्फ़रपुर के कुढ़नी ज़िले में 9 वर्षीय बच्ची के बलात्कार की घटना और जानलेवा हमले की ख़बर सामने आयी। घटना के कुछ दिन बाद ही बच्ची की अस्पताल में मौत हो गयी।

• जून 2025, में ओड़िशा के गंजाम ज़िले में दो दलित युवकों पर गौ-तस्करी के शक़ के आधार पर भीड़ द्वारा हमला किया गया। युवकों को ज़बरन नाली का पानी पिलाया गया और घास खाने को मज़बूर किया गया। इसी के साथ कई किलोमीटर घुटने के बल रेंगने के लिए भी मज़बूर किया गया।

• उत्तर कर्नाटक के यादगीर ज़िले के बप्पारागा गाँव में 50 दलित परिवारों का सामाजिक बहिष्कार किया गया। ऐसा इसलिए किया गया है क्योंकि ऊँची जाति के लड़के द्वारा नाबालिग दलित बच्ची के उत्पीड़न के ख़िलाफ़ परिजनों ने मुक़दमा दर्ज करवा दिया गया था। केस दर्ज कराने के बाद पहले तो पीड़िता के परिजनों पर केस वापस लेने का दबाव डाला गया। जब उन्होंने केस वापस लेने से मना किया तो इलाक़े के सभी दलितों का बहिष्कार कर दिया गया।

• जुलाई 2025, में हरियाणा के हिसार में डीजे चलाने पर पुलिस द्वारा मार-पिटाई करने पर एक दलित युवक की मौत हो गयी, जबकि एक युवक ज़िन्दगी और मौत से जूझ रहा है।

• अप्रैल 2025, में हिसार के मदनहेड़ी गाँव में कांग्रेस प्रत्याशी जस्सी पेटवाड़ (जो उच्ची जाति से सम्बन्ध रखते हैं) को वोट देने के लिए दलित समुदाय पर जबरन दबाव डाला गया, इसका विरोध करने पर लगभग 80 दलित परिवारों का समाजिक बहिष्कार किया गया।

• नवम्बर 2024, में मध्य प्रदेश से दो दलित उत्पीड़न की घटनाएँ सामने आयी।

• मध्य प्रदेश के शिवपुरी में इंदरगढ़ गाँव में इलाक़े में सरपंच ने ज़मीन और बोरबेल के मामूली विवाद के बाद युवक की हत्या कर दी।

• मध्य प्रदेश के जबलपुर के तिलवारा क्षेत्र में भाजपा के बूथ अध्यक्ष अमित द्विवेदी ने दलित परिवार से मारपीट की, यहाँ तक की उसने मासूम बच्चे तक पर हमला किया।

ये चन्द घटनाएँ ही भाजपा के रामराज्य की हकीक़त बताती हैं। जहाँ एक तरफ़ अपराध ख़त्म करने के दावे किये जा रहे हैं, तमाम नेता-मन्त्रियों द्वारा जातिगत बराबरी की नौटंकी करते हुए दलित और ग़रीब बस्तियों में खाना खाने और रात बिताने की नौटंकी की जाती है, लेकिन दूसरी तरफ़ सच्चाई इससे कहीं दूर है। असलियत में हर रोज़ दलितों के ख़िलाफ़ बर्बतम घटनाएँ अंजाम दी जाती हैं। फ़ासीवादी भाजपा सरकार के राज में दलित-विरोधी आपराधिक मानसिकता को पूरी तरह से संरक्षण मिला हुआ है। एक बार आँकड़ों पर निगाह डालते हैं, जो भाजपा के राज्य में दलित विरोधी अपराधों की सच्चाई बताते हैं।

बोलते आँकड़े चीखती सच्चाई

एनसीआरबी की रिपोर्ट बताती है कि 2019 की तुलना में 2020 में दलित विरोधी अपराधों में वृद्धि हुई है और इस में भी उत्तर प्रदेश शीर्ष पर है। दलितों की सुरक्षा के लिए बनाये गये तमाम क़ानून केवल काग़ज़ी हैं। पुलिस प्रशासन से लेकर व्यवस्था की पूरी मशीनरी में ऐसी दलित-विरोधी मानसिकता को प्रश्रय देने वाले भरे पड़े हैं। आज यह सबकुछ सामान्य बनता जा रहा है। मनुवाद और ब्राह्मणवाद की पैरोकार भाजपा के सत्ता में आने के बाद जातिवादी दलितों पर हमले तेज़ हुए हैं। वहीं अगर हम 2021 की रिपोर्ट पर नज़र डाले तो स्थिति और भी भयंकर नज़र आती है:-

एनसीआरबी की रिपोर्ट के अनुसार पता चला है कि 2021 में अनुसूचित जातियों (एससी) के ख़िलाफ़ उत्पीड़न में 1.2 प्रतिशत की वृद्धि हुई है, जिसमें उत्तर प्रदेश में उत्पीड़न के सबसे अधिक मामले 25.82 प्रतिशत दर्ज किये गये हैं। इसके बाद राजस्थान में 14.7 प्रतिशत और मध्य प्रदेश में 2021 के दौरान 14.1 प्रतिशत मामले दर्ज किये गये हैं। इसके अलावा, रिपोर्ट के अनुसार 2021 में अनुसूचित जनजातियों (एसटी) के ख़िलाफ़ अत्याचार में 6.4 प्रतिशत की वृद्धि हुई है, जिसमें मध्य प्रदेश में सबसे अधिक 29.8 प्रतिशत मामले दर्ज किये गये हैं। इसके बाद राजस्थान में 24प्रतिशत और ओडिशा में 2021 में 7.6 प्रतिशत मामले दर्ज किये गये हैं।

दलित और आदिवासी महिलाओं के ख़िलाफ़ भी उत्पीड़न और शोषण में वृद्धि हुई है। कुल दर्ज मामलों में से अनुसूचित जाति की महिलाओं (नाबालिगों सहित) के ख़िलाफ़ बलात्कार के मामले 7.64 प्रतिशत और अनुसूचित जनजाति की महिलाओं के ख़िलाफ़ 15 प्रतिशत हैं। रिपोर्ट में दलित महिलाओं के ख़िलाफ़ बलात्कार के मामलों के विस्तृत आँकड़े भी प्रस्तुत किये गये हैं, जिनमें नाबालिगों के साथ बलात्कार, बलात्कार का प्रयास और महिलाओं व नाबालिगों के अपहरण के मामले शामिल हैं, जो कुल मिलाकर अनुसूचित जाति की महिलाओं के लिए 16.8 प्रतिशत और अनुसूचित जनजाति की महिलाओं के लिए 26.8 प्रतिशत हैं।

रिपोर्ट से यह भी पता चलता है कि वर्ष 2021 के अन्त तक अनुसूचित जातियों के विरुद्ध उत्पीड़न के कुल 70,818 मामले सामने आये है, जो कि जाँच के लिए लम्बित थे। इसी के साथ अनुसूचित जनजातियों के ख़िलाफ़ भी उत्पीड़न के 12,159 मामलों के जाँच लम्बित थे और इस दौरान अनुसूचित जातियों के विरुद्ध अत्याचार के कुल 2,63,512 मामले और अनुसूचित जनजातियों के विरुद्ध अत्याचार के 42,512 मामले अदालत में सुनवाई के लिए आये।

ये तो वो आँकड़े है जो दर्ज हो पाये हैं, लेकिन बहुतेरे दलित विरोधी उत्पीड़न और शोषण के मामले सामाजिक डर और आर्थिक असुरक्षा के चलते पुलिस-प्रशासन के संज्ञान में ही नहीं आ पाते। लेकिन सोचने वाली बात यह भी है कि अन्य मामले भी पुलिस और कोर्ट की फ़ाइलों में दर्ज होने के बाद भी तार्किक परिणति तक नहीं पहुँच ही नहीं पाते है। देश भर में हुए भयंकर दलित-विरोधी काण्ड और उनकी न्यायिक प्रक्रिया हमारी न्यायव्यवस्था पर भी बहुत से सवाल खड़ी करती है।

अस्मितावादी(पहचान की राजनीति) नहीं, वर्ग-आधारित जाति-विरोधी आन्दोलन का रास्ता ही दलित मुक्ति का रास्ता है!

हमें यह बात भी गाँठ बाँध लेनी होगी कि बिना क्रान्ति के दलित मुक्ति नहीं हो सकती और बिना एक जुझारू वर्ग-आधारित जाति-विरोधी आन्दोलन के क्रान्ति का रास्ता निर्मित करना भी असम्भव है। जातिवाद और ब्राह्मणवाद आज भौतिक और विचारधारात्मक दोनों ही तौर पर पूँजीवादी व्यवस्था की ही सेवा कर रहा है। जातिगत अस्मितावाद, दलितवाद और तमाम तरह की अस्मितावादी राजनीति और अम्बेडकरवादी व्यवहारवाद, संविधानवाद व सुधारवाद आज पूँजीवाद के लिए 'संजीवनी बूटी' के समान है। मौजूदा निज़ाम और हुक़्मरान पूँजीवाद द्वारा परिष्कृत करके अपना ली गयी जाति-व्यवस्था का अपने हितों के लिए ख़ूब इस्तेमाल कर रहे हैं। यही कारण है कि आज़ादी के 78 साल बाद भी जातिवादी दमन-उत्पीड़न के वाकये घटने के बजाय नये-नये रूपों में बढ़ ही रहे हैं। यदि देशव्यापी आँकड़ों पर नज़र दौड़ायें तो दलितों का क़रीब 95 प्रतिशत हिस्सा खेतिहर मज़दूर, निर्माण मज़दूर, औद्योगिक मज़दूर के तौर व आम तौर पर अनौपचारिक क्षेत्र के मज़दूरों के तौर पर पर खट रहा है या फिर साफ़-सफ़ाई जैसे काम में लगा है। इस मज़दूर आबादी के मुद्दे सीधे तौर पर देश की अन्य मेहनतकश आबादी के साथ भी जुड़ते हैं। शिक्षा-रोज़गार-चिकित्सा-आवास-महँगाई जैसे मुद्दों पर होने वाले संघर्षों में हर जाति की मेहनतकश जनता की साझा भागीदारी सुनिश्चित की जानी चाहिए। मज़दूर वर्ग में अन्य जातियों के जनसमुदायों के दिमाग़ में बैठे शासक वर्ग के विचारों यानी जातिगत पूर्वाग्रहों, श्रेष्ठतावाद, ब्राह्मणवाद के विरुद्ध भी तभी संघर्ष किया जा सकता है। अपने भीतर मौजूद शासक वर्ग की विचारधारा और उसके प्रभाव के विरुद्ध संघर्ष का मज़दूर वर्ग का नारा है : एकजुटता और साझा संघर्ष। यह साझा संघर्ष हमारे दुश्मन यानी पूँजीपति वर्ग के ख़िलाफ़ है और साथ ही उसके विचारों की हमारे भीतर मौजूदगी के ख़िलाफ़ भी है। जनता के बीच मौजूद अन्तरविरोधों को इसी प्रकार से हल किया जा सकता है।

दलित-विरोधी उत्पीड़न के मुद्दों के ख़िलाफ़ लड़े जाने वाले संघर्षों को मज़बूती के साथ तभी लड़ा जा सकता है, जब हर जाति की व्यापक मेहनतकश जनता को जाति-व्यवस्था के ख़िलाफ़ लामबन्द किया जायेगा। तभी जाति-व्यवस्था के ख़ात्मे की लड़ाई को भी आगे बढ़ाया जा सकता है। साथ ही आज ऐसी हर घटना के ख़िलाफ़ एक तरफ़ तो हमें सड़कों पर उतरकर प्रतिरोध दर्ज कराना ही होगा, साथ ही इस भ्रम से भी मुक्त होना होगा कि इस व्यवस्था के दायरे के भीतर दलित-मुक्ति का कोई रास्ता निकाला जा सकता है। आज वर्गीय एकता क़ायम करके हमें जाति-उन्मूलन के ख़िलाफ़ संघर्ष को तेज़ करने के लिए आगे आना होगा।

बारिश ने उजागर की "स्मार्ट सिटी" की हक़ीकत

(पेज 8 से आगे)

के लिए है? क्या आम मज़दूर को साफ़-सुथरा और सुरक्षित जीवन जीने का कोई हक़ नहीं? मोदी सरकार ने तो सत्ता में आने के बाद से "स्वच्छ भारत" का सबसे ज़्यादा ढोल बजाया है। लेकिन हर बारिश में इस नौटंकी की सच्चाई जनता के सामने आ जाती है।

साफ़-सफ़ाई का मुद्दा सिर्फ "गन्दगी साफ करने" तक सीमित नहीं है। ये एक **वर्गीय प्रश्न** है। जिन इलाकों में अमीर लोग रहते हैं, आम तौर पर वहाँ की गलियाँ बारिश से पहले भी साफ कर दी जाती हैं, सीवर पहले से चेक कर लिए जाते हैं, स्ट्रीट लाइट्स दुरुस्त होती हैं। लेकिन ग़रीबों की बस्तियाँ, झुग्गियाँ, और मज़दूरों की कॉलोनियाँ प्रशासन की नज़र में आखिरी पायदान पर भी नहीं आतीं। हमें भी इस सवाल को निजी परेशानी नहीं, बल्कि **सामूहिक जन संकट** के रूप में लेना होगा और यह समझना होगा कि जब तक हम संगठित नहीं होंगे, तब तक हर बार की तरह बारिश हमें डुबोती रहेगी।

बारिश ने जो दिखाया है वह सिर्फ मौसम की मार नहीं है — **यह पूँजीवादी व्यवस्था का भ्रष्टाचार, जनप्रतिनिधियों की जवाबदेही का पूर्ण अभाव, और सरकारी तन्त्र की मजदूर-विरोधी मानसिकता की असली तस्वीर है।**

मज़दूर वर्ग को अब और इन्तज़ार नहीं करना चाहिए। अब समय है कि हम अपने हक़ के लिए, साफ़-सुथरे और सुरक्षित जीवन के लिए, स्वच्छता और स्वास्थ्य की बुनियादी सुविधाओं के लिए **संगठित होकर संघर्ष करें।** साफ है कि **सफ़ाई कर्मचारी हो या झुग्गी में रहने वाला मज़दूर — जब सफ़ाई और स्वास्थ्य की बात आती है तो सरकार उन्हें भूल जाती है।**

हमें क्या करना होगा?

हर बार नेताओं को गालियाँ देने से कुछ नहीं होगा। अब वक़्त आ गया है कि आम जनता, खासकर मज़दूर वर्ग और आम मेहनतकश कामकाज़ी लोग एकजुट होकर इन बुनियादी सवालों पर संगठित होकर आवाज़ बुलन्द करें। बैठकर इन्तज़ार करते रहने, अपनी क़िस्मत और हालात को कोसते रहने से कुछ नहीं होगा। हमें अपने शत्रु को पहचानना होगा, और उसके विरुद्ध संघर्ष को संगठित करना होगा। इसके लिए हमें अपने इलाकों को संगठित होकर निम्न कार्रवाइयाँ करनी होंगी:

अपने वार्ड के पार्षद, विधायक और सांसद से जवाब माँगना होगा

लोकल स्तर पर जन-जागरूकता अभियान चलाना होगा

गलियों की सफाई, सीवरेज और सड़कों की मरम्मत के लिए लगातार ज्ञापन, घेराव और प्रदर्शन जैसे कदम उठाने होंगे

जहाँ संभव हो, जनता को खुद सफाई अभियान चलाकर, प्रशासन की लापरवाही को सार्वजनिक रूप से उजागर करना चाहिए और लोगों को सफ़ाई के अधिकार को एक बुनियादी अधिकार के तौर पर पहचानने और उसके लिए लड़ने के लिए शिक्षित करना होगा।

देशभर में 9 जुलाई को हुई 'आम हड़ताल' से मज़दूरों ने क्या पाया?

इस हड़ताल से हमारे लिए क्या सबक़ निकलता है?

● भारत

बीते 9 जुलाई को एक बार फिर केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों द्वारा एक दिवसीय हड़ताल का आयोजन किया गया। ज्ञात हो कि यह हड़ताल पहले 20 मई को होने वाली थी, पर अचानक 15 मई को हड़ताल स्थगित करने की घोषणा कर दी गयी थी। इसका कारण बताया गया कि देश में युद्ध का माहौल है, आपात स्थिति है, मालिकों को सूचित नहीं किया गया है इसलिए "राष्ट्रहित" में हड़ताल स्थगित की जा रही है! "राष्ट्रहित" वास्तव में किसका हित होता है, यह हम मज़दूर अच्छी तरह से जानते हैं। इसका अर्थ जनता का हित या देश का हित नहीं होता बल्कि शासक वर्ग और उसकी सत्ता का हित होता है। और अगर तमाम पूँजीवादी दलों से जुड़ी केन्द्रीय ट्रेड यूनियनें इस "राष्ट्रहित" के नाम पर अपने पेट में मरोड़ पैदा कर रहीं थीं, तो हमारे लिए इसमें कोई ताज्जुब की बात नहीं है। बहरहाल, इन केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों ने हड़ताल सिर्फ़ इसलिए वापस ली ताकि शासक वर्ग युद्धोन्माद फैलाकर जनता का ध्यान असल मुद्दों से भटका सके। जबकि यही समय होता है, जब मज़दूर वर्ग इस बात की पहचान करे कि उसका दुश्मन अन्य देशों के मज़दूर व ग़रीब किसान और उन्हीं के वर्दी पहने बेटे-बेटियाँ नहीं, बल्कि स्वयं उनके देश के सरमायेदार और हुक्मरान हैं। ऐसे मौके पर मज़दूर वर्ग को संगठित होकर सरकार और पूँजीपतियों पर दवाब बनाना चाहिए और अपनी न्यायपूर्ण व जायज़ माँगों के लिए संघर्ष करना चाहिए। इतिहास में भी इसके कई उदाहरण मिलते हैं। लेकिन ऐसे मौक़ों पर पूँजीवादी दलों से जुड़ी यूनियनें पूरी तरह से पूँजीपति वर्ग के गोद में जा बैठती हैं और इस बार भी ऐसा ही हुआ। जो भी हो, 9 जुलाई को यह 'आम हड़ताल' आयोजित की।

बहरहाल, इस साल भी केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों ने सालाना त्योहार की तरह केन्द्र सरकार की मज़दूर-विरोधी नीतियों के ख़िलाफ़ आम हड़ताल की घोषणा की और 9 जुलाई को औद्योगिक क्षेत्रों से लेकर जन्तर-मन्तर पर धरना प्रर्दशन किया। केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों के ही आकलन के अनुसार कुल मिलाकर 25 करोड़ मज़दूरों ने इस हड़ताल में भागीदारी की। इस प्रतीकात्मक कार्रवाई से शायद कुछ को कुछ उत्साह का अहसास हुआ। लेकिन इससे पहले कि कुछ ठोस हासिल होता मज़दूर वापस फ़ैक्टरियों में जा चुके थे और फिर से शोषण के चक्के में अपना हाड़-माँस गला रहे हैं। हम क्या सिर्फ़ इस बात से सन्तोष कर लें कि इस प्रतीकात्मक हड़ताल में मज़दूर वर्ग के एक हिस्से ने भागीदारी की और अपनी ताक़त दिखायी? क्या एक दिन मज़दूरों द्वारा एक बड़ी रैली निकाल लेने से, आंशिक तौर पर काम-बन्दी करने से मज़दूर वर्ग और मालिक वर्ग के बीच संघर्ष में कोई निर्णायक अन्तर आयेगा? क्या इस हड़ताल के बाद राज्य सरकारें तय न्यूनतम वेतन लागू करने लगीं? या बढ़े हुए रेट से वेतन मिलने लगा? ठेका प्रथा ख़त्म हो गयी? फ़ैक्टरियों के हालात सुधर गये? नहीं! ऐसा नहीं होने वाला है। यह बात हम और आप अपनी ज़िन्दगी के हालात को देखकर अच्छी तरह समझते हैं। ठेका प्रथा का दंश झेल रहे मज़दूरों के एक सशक्त आन्दोलन को खड़ा करने या मज़दूरों के अधिकारों को हासिल करने के लिए कोई व्यवस्थित और दीर्घकालिक जुझारू संघर्ष का कार्यक्रम लेने की बजाय ऐसी ग़द्दार ट्रेड यूनियनें एक दिन की हड़ताल की नौटंकी से मज़दूरों के गुस्से को शान्त करने की क़वायद में जुटी हुई हैं। यह भी ग़ौरतलब है कि अनौपचारिक व असंगठित क्षेत्र के ठेका, दिहाड़ी, कैजुअल मज़दूरों में इस रस्म-अदायगी का असर न के बराबर रहा क्योंकि वे भी इस बात को समझते हैं कि ऐसी क़वायदों से कुछ वास्तविक हासिल होने वाला नहीं है। पिछले 30 वर्षों से ज़्यादा समय से सीटू, एटक, इण्टक, ऐक्टू, आदि जैसी केन्द्रीय ट्रेड यूनियनें यह सालाना रस्म निभाती आ रही हैं। आप अपने आपसे पूछें कि क्या इन तीन-साढ़े तीन दशकों में मज़दूरों के काम और जीवन के हालात बेहतर हुए हैं या बदतर हुए हैं? निश्चित तौर पर, जब ये एकदिनी हड़तालें होती हैं तो हम भी इसमें शिरक़त करते हैं क्योंकि अगर हमारे औद्योगिक इलाके या कारखाने में एक दिन की भी हड़ताल हो और उसमें मज़दूरों की एक विचारणीय अल्पसंख्या भी शिरक़त कर रही हो, तो हम काम पर कैसे जा सकते हैं? लेकिन इस मौक़े पर हमें अपने आपसे और अपने मज़दूर भाइयों-बहनों से यह पूछने की ज़रूरत है कि क्या हम इस तरह की सालाना रस्म-अदायगी से सन्तुष्ट हो जायें, या फिर हमें इससे आगे जाकर हड़ताल के मज़दूर वर्ग के महत्वपूर्ण हथियार का असल प्रदर्शन करने की तैयारियों में जुटना होगा?

1990 में नवउदारवाद और निजीकरण की नीतियों के लागू होने के बाद से केवल दिल्ली राज्य के स्तर पर नहीं बल्कि क़रीब 25 बार देश के स्तर पर 'भारत बन्द', 'आम हड़ताल', 'प्रतिरोध दिवस' का आह्वान ये केन्द्रीय ट्रेड यूनियनें दे चुकी हैं, पर ये अनुष्ठानिक हड़तालें महज़ मज़दूरों के गुस्से के फटने से पहले प्रेशर को कम

करने वाले सेफ़्टी वाल्व का काम कर इस व्यवस्था की ही रक्षा करती हैं। वैसे जब मोदी सरकार संसद में बैठकर श्रम क़ानूनों को तोड़ने-मरोड़ने का काम कर रही होती हैं, तब ये यूनियनें चूँ तक नहीं करतीं। तब इनकी शिकायत महज़ यह होती है कि इनसे इस बात की सहमति नहीं ली गयी! मतलब अगर सहमति ली जाती तो मज़दूर विरोधी क़ानूनों को लागू होने में इन्हें कोई परेशानी नहीं थी! इस प्रकार के दन्त-नखविहीन "विरोध" से फ़ासीवादी मोदी-शाह सरकार को खुजली भी नहीं होती।

इन एकदिनी हड़तालों का आह्वान किन यूनियनों द्वारा किया जाता है? सीटू, एटक, एक्टू से लेकर एचएमएस व अन्य केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों के द्वारा, जिनकी पूँछ पकड़कर कुछ अराजकतावादी-संघाधिपत्यवादी संगठन जैसे कि मज़दूर सहयोग केन्द्र या इंक़लाबी मज़दूर केन्द्र, जो बेगानी शादी में अब्दुल्ला दीवाना बनने के लिए मतवाले रहते हैं। जहाँ तक केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों की बात है, तो इनसे पूछा जाना चाहिए कि एकदिनी हड़ताल करने वाली इन यूनियनों की आका पार्टियाँ संसद विधानसभा में मज़दूर-विरोधी क़ानून पारित होते समय क्यों चुप्पी मारकर बैठी रहती हैं, या उसके जवाब में सड़कों पर उतरकर अनिश्चितकालीन हड़ताल का आह्वान क्यों नहीं करतीं? जब पहले से ही लचर श्रम क़ानूनों को और भी कमज़ोर करने के संशोधन संसद में पारित किये जा रहे होते हैं, तब ये ट्रेड यूनियनें और इनकी राजनीतिक पार्टियाँ कुम्भकर्ण की नींद सोये होते हैं। भूलना नहीं चाहिए कि माकपा, भाकपा आदि जैसे संसदीय वामपन्थियों समेत सभी चुनावी पार्टियाँ संसद और विधानसभाओं में हमेशा मज़दूर-विरोधी नीतियाँ बनाती आयी हैं, तो फिर इनसे जुड़ी ट्रेड यूनियनें मज़दूरों के हक़ों के लिए कैसे लड़ सकती हैं? पश्चिम बंगाल में टाटा का कारख़ाना लगाने के लिए ग़रीब मेहनतकशों का क़त्लेआम हुआ तो माकपा व भाकपा से जुड़ी ट्रेड यूनियनों ने इसके ख़िलाफ़ कोई आवाज़ क्यों नहीं उठायी? जब कांग्रेस और भाजपा की सरकारें मज़दूरों के हक़ों को छीनती हैं, तो भारतीय मज़दूर संघ, इण्टक आदि जैसी यूनियनें चुप्पी क्यों साधे रहती हैं? ज़्यादा से ज़्यादा चुनावी पार्टियों से जुड़ी ये ट्रेड यूनियनें इस तरह रस्मी प्रदर्शन या विरोधकी नौटंकी ही करती हैं।

अब यह बात मज़दूरों की एक विचारणीय संख्या के सामने स्पष्ट होने लगी है कि पूँजीवादी दलों व संशोधनवादी दलों से जुड़ी ये केन्द्रीय ट्रेड यूनियनें इसी पूँजीवादी व्यवस्था व पूँजीपति वर्ग की रक्षक हैं जो इस तरह के प्रदर्शनों से व्यवस्था को संजीवनी प्रदान करती हैं। दूसरी बात यह कि 5 करोड़ संगठित पब्लिक सेक्टर के मज़दूरों की सदस्यता वाली ये यूनियनें इन मज़दूरों के हक़ों को ही सबसे प्रमुखता से उठाती हैं। असंगठित क्षेत्र के मज़दूरों की माँगें इनके माँगपत्रक में निचले पायदान पर जगह पाती है और इस क्षेत्र के मज़दूरों का इस्तेमाल महज़ भीड़ जुटाने के लिए किया जाता है। देश की 51 करोड़ खाँटी मज़दूर आबादी में क़रीब 90 फ़ीसदी आबादी असंगठित क्षेत्र के मज़दूरों की हैं, ये न तो उनके मुद्दे उठाती हैं और न ही उनके बीच इनका कोई आधार है। तीसरी बात, अगर ये वाक़ई न्यूनतम वेतन को नयी ऊँची दर से लागू करवाना चाहती हैं और केन्द्र व राज्य सरकार के मज़दूर-विरोधी संशोधनों को सच में वापस करवाने की इच्छुक हैं, तो क्या इन्हें इस हड़ताल को अनिश्चितकाल तक नहीं चलाना चाहिए? यानी कि तब तक जब तक सरकार मज़दूरों से किये अपने वायदे पूरे नहीं करती और उनकी माँगों के समक्ष झुक नहीं जाती है? मज़दूर इसके लिए तैयार हैं या किये जा सकते हैं, परन्तु ये यूनियनें ऐसा कभी नहीं करेंगी। क्योंकि इनका मक़सद मज़दूरों के हक़-अधिकार जीतना नहीं, बल्कि मज़दूरों का गुस्सा हद से ज़्यादा बढ़ने से रोकना है। एकदिवसीय हड़ताल की नौटंकी इसलिए ही की जाती है ताकि मज़दूर एक दिन अपनी भड़ाँस निकालें और व्यवस्था विरोधी क़दम न उठायें और दूसरी तरफ़ तमाम केन्द्रीय ट्रेड यूनियन और उनकी आका संसदमार्गी सामाजिक जनवादी पार्टी सुरक्षा पंक्ति के रूप में अपना अस्तित्व बनाये रखें!

इनके साथ ही इंक़लाबी मज़दूर केन्द्र और मज़दूर सहयोग केन्द्र जैसे संगठन भी हैं, जो वैसे ख़ुद को क्रान्तिकारी घोषित करते हैं और इन केन्द्रीय यूनियन को दलाल बताते हैं, लेकिन इन एक दिन की हड़तालों में इनकी पूँछ पकड़ कर चलते हैं और रस्म अदायगी में हिस्सेदारी करते हैं, जबकि ज़रूरत है कि इन हड़तालों में भागीदारी करते हुए भी व्यापक मज़दूर आबादी के बीच इस बात का प्रचार किया जाय कि एकदिनी रस्मी हड़तालों के सिलसिले को तोड़कर अनिश्चितकालीन आम हड़ताल को संगठित करने की दिशा में आगे बढ़ना होगा, क्योंकि तभी मालिकान और उनकी मैनेजिंग कमेटी का काम करने वाली सरकारें हमारे बात सुनेंगी। इनके भी इस दोमुँहेपन को मज़दूरों को समझना चाहिए।

हमें समझना होगा कि हड़ताल मज़दूर वर्ग का एक बहुत ताक़तवर हथियार है, जिसका इस्तेमाल बहुत तैयारी और सूझबूझ के साथ किया जाना चाहिए। हड़ताल के नाम पर एक या दो दिन की रस्मी क़वायद से इस हथियार की धार ही कुन्द हो सकती है। ऐसी एकदिनी हड़तालें मज़दूरों के गुस्से की आग को शान्त करने के लिए आयोजित की जाती हैं, ताकि कहीं मज़दूर वर्ग के क्रोध की संगठित शक्ति से इस पूँजीवादी व्यवस्था के ढाँचे को ख़तरा न हो। ये एकदिवसीय हड़ताल इन केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों द्वारा रस्मी क़वायद है, जो मज़दूरों को अर्थवाद के जाल से बाहर नहीं निकलने देने का एक उपक्रम ही साबित होती है। यह अन्ततः मज़दूरों के औज़ार हड़ताल को भी धारहीन बनाने का काम करती है। तो फिर इस हड़ताल के प्रति मज़दूरों का क्या रवैया होना चाहिए? सही क़दम यह है कि हमें एकदिवसीय हड़ताल का अनालोचनात्मक समर्थन नहीं करना चाहिए और ना ही इससे दूर रहना चाहिए, बल्कि इस हड़ताल में भागीदारी कर केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों द्वारा हड़ताल के इस बेअसर इस्तेमाल को बेपर्दा करना चाहिए। इसमें भागीदारी कर हमें केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों के हाथों से नेतृत्व को छीनने की दिशा में आगे बढ़ना चाहिए, क्योंकि हड़ताल सरीखे किसी भी एक्शन में अगर सुधारवादी यूनियनें व नेता मज़दूरों को नेतृत्व देंगे, तो यह हड़ताल के हमारे अहम हथियार को कुन्द करने के साथ मज़दूरों में भी पस्तहिम्मती का माहौल फैलायेंगे। केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों द्वारा व्यवस्था की सुरक्षा पंक्ति के रूप में भूमिका निभाने को भी हमें बेपर्दा करना होगा। इसके ज़रिये ही मज़दूर आन्दोलन को एक नयी दिशा दी जा सकती है, निराशा के घटाटोप को चीरा जा सकता है और अपने हक़ों के लिए संघर्ष को एक नये ऊँचे धरातल पर ले जाया जा सकता है।

पूँजीवादी मुनाफ़े का चक्का जाम करने के लिए लम्बी लड़ाई की तैयारी आज से ही शुरू करनी होगी!

(पेज 1 से आगे)

एकदिवसीय हड़तालों से मज़दूर-विरोधी नीतियों का बुलडोज़र तो नहीं रुका, हाँ मज़दूर वर्ग के अलग-अलग हिस्सों के भीतर इन नीतियों के ख़िलाफ़ पनप रहे गुस्से को तात्कालिक तौर पर अवमुक्त होने का एक प्रतीकात्मक रास्ता मिल जाता है और इस रूप में यह अनुष्ठानिक हड़तालें व्यवस्था के लिए 'सेफ़्टी वॉल्व' का काम करती हैं। वास्तविकता यह है कि इन हड़तालों से व्यवस्था की सेहत पर कोई फर्क नहीं पड़ता है और जो कुछ भी छोटी-मोटी कमी पूँजीपतियों और मालिकों के मुनाफ़े में आती है, उसकी भरपाई भी मालिक मज़दूरों से ओवरटाइम करवाकर कर लेते हैं जिसपर इन केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों की पूरी सहमति होती है। दरअसल मज़दूर वर्ग से ऐतिहासिक गद्दारी कर चुकी ये यूनियनें और इनकी आका पार्टियाँ पूँजीवादी व्यवस्था की अंतिम सुरक्षा-पंक्ति का काम करती हैं और अपनी इन रस्मी कवायदों के ज़रिये मज़दूर वर्ग के गुस्से पर ठंडे पानी की छींटें डालने का काम करती रहती हैं।

ये केन्द्रीय ट्रेड यूनियनें न तो मज़दूर विरोधी लेबर कोडों के प्रश्न पर और न ही ठेका प्रथा के प्रश्न पर कोई वास्तविक संघर्ष का मार्ग प्रस्तुत करती हैं और न ही ऐसा करने का उनका कोई इरादा ही है। इन एकदिवसीय हड़तालों को अनिश्चितकालीन हड़ताल में तब्दील करने की क्रान्तिकारी अवस्थिति पर भी यह चुप्पी साध लेती हैं। वहीं संसद-विधान सभाओं में बैठी इनकी आका पार्टियाँ मज़दूर विरोधी नीतियों पर बस ज़ुबानी जमाखर्च के ज़रिये अपना विरोध दर्ज कराती हैं। यहीं नहीं, जिन राज्यों में इनकी सरकार/सरकारें हैं या थीं वहाँ ये इन्हीं पूँजीपरस्त नीतियों को धड़ल्ले से लागू करवाने का काम अंजाम देती रही हैं। एक मज़बूत जुझारू आन्दोलन खड़ा करने या मज़दूरों के अधिकारों की हिफ़ाज़त करने के लिए कोई व्यवस्थित व दीर्घकालिक संघर्ष का कार्यक्रम लेने और उसकी तैयारी करने की बजाय ये ट्रेड यूनियनें एकदिवसीय हड़ताल की नौटंकी के ज़रिये मज़दूरों के असंतोष को शान्त करने की रस्मी क़वायद में संलग्न हैं।

इसके अलावा इन अनुष्ठानिक हड़तालों का ज़्यादा असर औपचारिक व संगठन क्षेत्र व संगठित मज़दूरों-कर्मचारियों में ही दिखलाई पड़ता है। इसका एक कारण तो यही है कि इन केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों का आधार ही मुख्य तौर पर औपचारिक और संगठित क्षेत्र की मज़दूर आबादी के बीच ही है। असंगठित क्षेत्र के मज़दूरों की माँगें इनके माँगपत्रक में निचले पायदान पर जगह पाती है और इस क्षेत्र के मज़दूरों का इस्तेमाल महज़ भीड़ जुटाने के लिए किया जाता है। दूसरे, अनौपचारिक व असंगठित क्षेत्र के मज़दूरों के एक विचारणीय हिस्से में यह धारणा भी स्वतःस्फूर्त तरीक़े से मौजूद है कि एक दिन की इस प्रतीकात्मकता से उन्हें हासिल ही क्या होगा? असंगठित मज़दूर आबादी के बीच तो ये बड़ी ट्रेड यूनियनें शादी में मेहमान के तरीक़े से उपस्थित रहती हैं। इन अनुष्ठानों से पहले इन यूनियनों के पदाधिकारी थोड़ा-बहुत प्रचार करके अपने "दायित्व" का निर्वहन कर देते हैं और फिर हड़ताल के दिन औद्योगिक इलाकों में एक प्रतीकात्मक रैली निकालने और कुछेक जगहों पर आंशिक कामबन्दी के बाद अगले एक साल तक के लिए अन्तर्धान हो जाते हैं!

मज़दूर वर्ग के सबसे ताक़तवर हथियारों में से एक हड़ताल का इस्तेमाल मज़दूरों को बेहद सूजबूझ और तैयारी के साथ करना चाहिए। आइये देखते हैं कि हड़तालों के विषय में मज़दूर वर्ग के अग्रणी शिक्षकों में से एक लेनिन का क्या मत था। लेनिन लिखते हैं कि "जब मज़दूर काम करने से इन्कार कर देते हैं, इस पूरे यंत्र (पूँजीवाद- *सम्पादक*) के ठप होने का ख़तरा पैदा हो जाता है। हरेक हड़ताल पूँजीपतियों को याद दिलाती है कि वे नहीं, बल्कि मज़दूर, वे मज़दूर वास्तविक स्वामी हैं, जो अधिकाधिक ऊँचे स्वर में अपने अधिकारों की घोषणा कर रहे हैं। हरेक हड़ताल मज़दूरों को याद दिलाती है कि उनकी स्थिति असहाय नहीं है, कि वे अकेले नहीं हैं।"

हड़ताल के महत्व को रेखांकित करते हुए लेनिन बताते हैं कि "सामान्य, शान्तिपूर्ण समय में मज़दूर बड़बड़ाहट किये बिना अपना काम करता है, मालिक की बात का प्रतिवाद नहीं करता, अपनी हालत पर बहस नहीं करता। हड़तालों के समय वह अपनी माँगें ऊँची आवाज़ में पेश करता है, वह मालिकों को उनके सारे दुर्व्यवहारों की याद दिलाता है, वह अपने अधिकारों का दावा करता है, वह केवल अपने और अपनी मज़दूरी के बारे में नहीं सोचता, बल्कि अपने सारे साथियों के बारे में सोचता है, जिन्होंने उसके साथ-साथ औज़ार नीचे रख दिये हैं और जो तकलीफ़ों की परवाह किये बिना मज़दूरों के ध्येय के लिए उठ खड़े हुए हैं। मेहनतकश जनों के लिए प्रत्येक हड़ताल का अर्थ है बहुत सारी तकलीफ़ें, भयंकर तकलीफ़ें, जिनकी तुलना केवल युद्ध द्वारा प्रस्तुत विपदाओं से की जा सकती है – भूखे परिवार, मज़दूरी से हाथ धो बैठना, अक्सर गिरफ़्तारियाँ, शहरों से भगा दिया जाना, जहाँ उनके घर-बार होते हैं तथा वे रोज़गार पर लगे होते हैं। इन तमाम तकलीफ़ों के बावजूद मज़दूर उनसे घृणा करते हैं, जो अपने साथियों को छोड़कर भाग जाते हैं तथा मालिकों के साथ सौदेबाज़ी करते हैं। हड़तालों द्वारा प्रस्तुत इन सारी तकलीफ़ों के बावजूद पड़ोस की फ़ैक्टरियों के मज़दूर उस समय नया साहस प्राप्त करते हैं, जब वे देखते हैं कि उनके साथी संघर्ष में जुट गये हैं। अंग्रेज़ मज़दूरों की हड़तालों के बारे में समाजवाद के महान शिक्षक एंगेल्स ने कहा था : "जो लोग एक बुर्जुआ को झुकाने के लिए इतना कुछ सहते हैं, वे पूरे बुर्जुआ वर्ग की शक्ति को चकनाचूर करने में समर्थ होंगे।" बहुधा एक फ़ैक्टरी में हड़ताल अनेकानेक फ़ैक्टरियों में हड़तालों की तुरन्त शुरुआत के लिए पर्याप्त होती है। हड़तालों का कितना बड़ा नैतिक प्रभाव पड़ता है, कैसे वे मज़दूरों को प्रभावित करती हैं, जो देखते हैं कि उनके साथी दास नहीं रह गये हैं और, भले ही कुछ समय के लिए, उनका और अमीर का दर्जा बराबर हो गया है! **प्रत्येक हड़ताल समाजवाद के विचार को, पूँजी के उत्पीड़न से मुक्ति के लिए पूरे मज़दूर वर्ग के संघर्ष के विचार को बहुत सशक्त ढंग से मज़दूर के दिमाग़ में लाती है। प्राय: होता यह है कि किसी फ़ैक्टरी या किसी उद्योग की शाखा या शहर के मज़दूरों को हड़ताल के शुरू होने से पहले समाजवाद के बारे में पता ही नहीं होता और उन्होंने उसकी बात कभी सोची ही नहीं होती। परन्तु हड़ताल के बाद अध्ययन मण्डलियाँ तथा संस्थाएँ उनके बीच अधिक व्यापक होती जाती हैं तथा अधिकाधिक मज़दूर समाजवादी बनते जाते हैं।"**

लेनिन के इन विचारों की तुलना पूँजीवादी दलों व संशोधनवादी दलों से जुड़ी ट्रेड यूनियनों के एकदिवसीय अनुष्ठान से की जाये तो किसी भी आम मज़दूर को स्पष्ट समझ में आ जाएगा कि किस प्रकार ये ट्रेड यूनियनें मज़दूर वर्ग के इस अमोघ अस्त्र को धारहीन बनाने की कोशिशों में जुटी हुई हैं। इन अनुष्ठानों के द्वारा हड़ताल रूपी "युद्ध की पाठशाला" में मज़दूर वर्ग को शिक्षित-दीक्षित करने की बजाय यह उन्हें अर्थवादी प्रतिकात्मकता और खोखली रस्मअदायगी के गोल चक्कर में घुमाते रहने का कुत्सित प्रयास करते हैं। लेनिन के उपरोक्त विचार दरअसल बतलाते हैं कि हड़ताल के दौरों में कैसे मज़दूर वर्ग महज़ वर्ग चेतना के क्षेत्र से वर्ग राजनीतिक चेतना के क्षेत्र में दाखिल होता है और उनके भीतर समाजवाद का विचार कैसे जन्म लेता है।

आगे लेनिन बताते हैं कि हड़ताल की पाठशाला ही मज़दूर वर्ग को मालिकों की पूरी जमात को दुश्मन के तौर पर देखना सिखलाती है। लेनिन बताते हैं कि "हड़ताल मज़दूरों को सिखाती है कि मालिकों की शक्ति तथा मज़दूरों की शक्ति किसमें निहित होती है; वह उन्हें केवल अपने मालिक और केवल अपने साथियों के बारे में ही नहीं, बल्कि तमाम मालिकों, पूँजीपतियों के पूरे वर्ग, मज़दूरों के पूरे वर्ग के बारे में सोचना सिखाती है। जब किसी फ़ैक्टरी का मालिक, जिसने मज़दूरों की कई पीढ़ियों के परिश्रम के बल पर करोड़ों की धनराशि जमा की है, मज़दूरी में मामूली वृद्धि करने से इन्कार करता है, यही नहीं, उसे घटाने का प्रयत्न तक करता है और मज़दूरों द्वारा प्रतिरोध किये जाने की दशा में हज़ारों भूखे परिवारों को सड़कों पर धकेल देता है, तो मज़दूरों के सामने यह सर्वथा स्पष्ट हो जाता है कि पूँजीपति वर्ग समग्र रूप में पूरे मज़दूर वर्ग का दुश्मन है और मज़दूर केवल अपने ऊपर और अपनी संयुक्त कार्रवाई पर ही भरोसा कर सकते हैं। अक्सर होता यह है कि फ़ैक्टरी का मालिक मज़दूरों की आँखों में धूल झोंकने, अपने को उपकारी के रूप में पेश करने, मज़दूरों के आगे रोटी के चन्द छोटे-छोटे टुकड़े फेंककर या झूठे वचन देकर उनके शोषण पर पर्दा डालने के लिए कुछ भी नहीं उठा रखता। हड़ताल मज़दूरों को यह दिखाकर कि उनका "उपकारी" तो भेड़ की खाल ओढ़े भेड़िया है, इस धोखाधड़ी को एक ही वार में ख़त्म कर देती है।"

लेनिन जोड़ते हैं कि "हड़तालों ने ही धीरे-धीरे तमाम देशों के मज़दूर वर्ग को मज़दूरों के अधिकारों तथा समग्र रूप में जनता के अधिकारों के लिए सरकारों के ख़िलाफ़ संघर्ष करना सिखाया है।" कुलमिलकर कहें तो लेनिन दरअसल मज़दूर वर्ग के लिए हड़ताल के ताक़तवर हथियार की ज़रूरत को ही रेखांकित कर रहे हैं। वहीं हम देख सकते हैं कि इस हथियार की धार को कुन्द करने का काम इन केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों द्वारा लगातार इन एकदिवसीय हड़तालों के सालाना अनुष्ठान के ज़रिये किया जा रहा है।

यह भी सच है कि आज किसी वास्तविक विकल्प और सुव्यवस्थित लम्बी तैयारी की अनुपस्थिति के कारण मज़दूरों का एक हिस्सा इन अनुष्ठानिक हड़तालों में शिरकत करता है। इसलिए प्रश्न उठता है तो फिर इस हड़ताल के प्रति हमारा रुख़ और रवैया क्या होना चाहिए? इसमें सही अवस्थिति यह है कि हमें न तो इन एकदिवसीय हड़तालों का अनालोचनात्मक समर्थन करना चाहिए और न ही इससे दूर रहना चाहिए। इन हड़तालों में भागीदारी कर हमें केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों द्वारा हड़ताल के हथियार के इस व्यर्थ और अप्रभावी प्रयोग को आम मज़दूरों के सामने उजागर करना चाहिए। मज़दूर वर्ग की क्रान्तिकारी हिरवाल ताकतों को इन सालाना अनुष्ठानों की सीमा और इनके वास्तविक चरित्र को उजागर करते हुए इन हड़तालों में ठीक इसीलिए शिरकत करनी चाहिए ताकि इन केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों की अर्थवादी, सुधारवादी, संशोधनवादी और अवसरवादी राजनीति को मज़दूर वर्ग की व्यापक आबादी के सामने बेपर्द किया जा सके। यदि इन प्रतीकात्मक कवायदों से क्रान्तिकारी ताक़तें अनुपस्थित रहेंगी तो इसका मतलब यह होगा कि हम मज़दूर वर्ग की एक बड़ी आबादी को इन ट्रेड यूनियन के रहमोकरम पर छोड़ रहे हैं। हमें एक दिन के लिए भी मज़दूरों को इनके भरोसे नहीं छोड़ना चाहिए बल्कि इस अवसर का इस्तेमाल इन यूनियनों की मौक़ापरस्ती और इनके द्वारा व्यवस्था की सुरक्षा पंक्ति के रूप में निभायी जाने वाली इनकी भूमिका को बेपर्द करने के लिए करना चाहिए। हड़ताल के सशक्त हथियार को उसकी ताक़त और असर इसी क़दम के ज़रिये वापस लौटाया जा सकता है।

साथ ही, मज़दूरों के बीच इस बात को लेकर क्रान्तिकारी प्रचार भी संगठित करना होगा कि इस तरह की सालाना रस्म-अदायगी से सन्तुष्ट होने से काम नहीं चलेगा और ऐसा करना हमारे दूरगामी हितों और लक्ष्य के लिए बेहद हानिकारक है। हमें एकदिवसीय हड़तालों के अनुष्ठानों से आगे जाकर हड़ताल के मज़दूर वर्ग के महत्वपूर्ण हथियार का वास्तविक प्रदर्शन करने की लम्बी तैयारियों में आज से ही जुटना होगा। आज ज़रूरत इस बात की है कि इन हड़तालों में भागीदारी करते हुए भी व्यापक मज़दूर आबादी के बीच इस बात का प्रचार किया जाय कि एकदिवसीय रस्मी हड़तालों के सिलसिले को तोड़कर अनिश्चितकालीन आम हड़ताल को संगठित करने की दिशा में आगे बढ़ना होगा, क्योंकि तभी पूँजीपति वर्ग और उनकी नुमाइन्दगी करने वाली सरकारों पर कोई असर होगा।

मतदाता सूची संशोधन, 2025 : जनता के मताधिकार को चुराने के लिए भाजपा का हथकण्डा और पीछे के दरवाज़े से एनआरसी लागू करने की नयी साज़िश

(पेज 1 से आगे)

तैयार की जाती थी और वह भी आख़िरी बार 2003 में ही किया गया था। 2003 में भी जब गहन पुनरीक्षण किया गया था तब चुनाव सिर पर नहीं थे और इसमें क़रीब 2 साल का समय लगा था। उसके बाद 22 सालों तक इस प्रक्रिया को छोड़ दिया गया। उसके बाद चुनाव आयोग ने माना कि जो मतदाता सूची मौजूद होगी उसमें ही सुधार किया जायेगा। पिछले 22 सालों से इसी प्रक्रिया को लागू किया जा रहा था। लेकिन इस बार जो विशेष गहन पुनरीक्षण किया जा रहा है उसके तहत अभी तक के सारे मतदाताओं को अमान्य करार दे दिया गया है (इस तरह तो 2003 के बाद के सभी चुनाव समेत 2024 में चुनकर आयी मोदी सरकार को भी अमान्य करार दे देना चाहिए)और नये सिरे से मतदाता सूची बनाने का काम किया जा रहा है। इसमें 2003 की मतदाता सूची को एक मानक माना गया है और उसमें जिनका नाम है उन्हें अपने मतदाता होने का सबूत नहीं देना होगा हालाँकि फॉर्म उन्हें भी भरना होगा। अब जिन लोगों का नाम 2003 की मतदाता सूची में नहीं है, जिनकी संख्या क़रीब-क़रीब 3 करोड़ है, उन्हें 3 श्रेणियों में बाँटा गया है।

पहली श्रेणी में वे लोग हैं जिनका जन्म 1 जुलाई, 1987 से पहले हुआ है उन्हें अपना जन्म प्रमाण पत्र देना होगा। दूसरी श्रेणी में वे लोग हैं जिनका जन्म 1 जुलाई, 1987 से 2 दिसम्बर, 2004 के बीच हुआ है। इस श्रेणी के लोगों को अपने जन्म प्रमाण पत्र के साथ-साथ माता या पिता का जन्म प्रमाण पत्र भी देना होगा। इसके बाद तीसरी श्रेणी में वे लोग हैं जिनका जन्म 2 दिसम्बर, 2004 के बाद हुआ है, उन्हें अपने साथ-साथ अपने माता और पिता दोनों के जन्म प्रमाण पत्र को दिखाना होगा। इतना भी अधिकांश नागरिकों के लिए भारी सिरदर्दी का काम होगा, लेकिन असल समस्या इसके बाद शुरू होती है। उपरोक्त तीनों श्रेणियों के लोगों को जो ज़रूरी काग़ज़ात दिखाने हैं उनमें आधार कार्ड, राशन कार्ड, ड्राइविंग लाइसेंस और मनरेगा कार्ड नहीं हैं । बल्कि उपरोक्त सभी लोगों को 1987 से पहले के पासपोर्ट, जातिगत, आवासीय, मैट्रिक सर्टिफिकेट और किसी सरकारी नौकरी का प्रमाण पत्र देना होगा। ऐसे ही कुल 11 दस्तावेज़ चुनाव आयोग ने माँगें हैं जो कि बिहार की एक बड़ी आबादी के पास हैं ही नहीं।

इन कागज़ों की हक़ीक़त देखिए! चुनाव आयोग ने जो दस्तावेज़ माँगे हैं उनमें से एक सरकारी नौकरी के दस्तावेज़ है। बिहार की कुल आबादी में मात्र 20.47 लाख लोग ही सरकारी नौकरी में हैं। इसके अलावा चुनाव आयोग जो दस्तावेज़ माँग रहा है वह है जन्म प्रमाणपत्र। मगर नेशनल फ़ैमिली हेल्थ सर्वे के अनुसार 2001 से 2005 के बीच जन्म लेने वाले मात्र 2.8 प्रतिशत लोगों के पास ही जन्म प्रमाणपत्र है। इस हिसाब से अगर माता-पिता के जन्म का प्रमाणपत्र माँगा जाएगा तो बिल्कुल नगण्य आबादी ही यह दे पायेगी। इसके अलावा मैट्रिक के दस्तावेज़ भी 18-40 साल की उम्र वाले 50 प्रतिशत से भी कम लोगों के पास उपलब्ध है। बिहार में हर साल 70 प्रतिशत से ज़्यादा हिस्सों में बाढ़ आती है। एक बड़ी आबादी अपने तमाम काग़ज़ात नहीं बचा पाती। बात आवासीय प्रमाण पत्र की करें तो वैसी ग़रीब आबादी जिनके पास अपनी ज़मीन नहीं है उनसे यह दस्तावेज़ माँगना ही जायज़ नहीं है। इसके साथ ही बिहार से एक बड़ी आबादी दूसरे शहरों में जाकर काम करती है। आमतौर पर त्योहारों में या फ़िर चुनाव के दौरान ही वह अपने घर आते हैं। ऐसे में प्रवासी मज़दूर भी इस लिस्ट से बाहर हो सकते हैं।

इन तमाम दिक्कतों के साथ सबसे बड़ी दिक्कत यह है कि बिहार के 8 करोड़ मतदाताओं के पास इस फ़ॉर्म को पहुँचाना और उसे सत्यापन करने का काम सिर्फ़ 25- 27 दिनों के बीच करना है जो कि लगभग असम्भव है। ऐसा इसलिए कहा जा रहा है क्योंकि 2003 में जब गहन पुनरीक्षण हुआ था तब 2 साल लगे थे जबकि उस समय मतदाताओं की संख्या लगभग 4 करोड़ 90 लाख थी। इसके अलावा अभी हाल ही में जातीय जनगणना में भी 5 महीने से अधिक समय लगा था जिसमें कोई काग़ज़ जमा करने का प्रावधान नहीं था। ऐसे में 8 करोड़ लोगों तक 1 महीने के भीतर पहुँचना लगभग असम्भव है। इसके साथ ही यह काम बिहार में मानसून के समय हो रहा है जब राज्य के एक तिहाई ज़िले बाढ़ की चपेट में रहते हैं। ऐसे में यह काम किस तरह होगा यह सोचने वाली बात है। हालाँकि चुनाव आयोग कह रहा है कि लाखों बीएलओ को तैनात किया गया है और उनके साथ लाखों वालण्टियर हैं। यह वालण्टियर कौन है इसके बारे में चुनाव आयोग कोई जानकारी सार्वजनिक नहीं कर रहा है। ऐसे में शक़ तो होगा ही कि कहीं ये लाखों वालण्टियर RSS से सम्बन्धित तो नहीं जो कि सीधे भाजपा को मदद पहुँचायें और भाजपा के विरुद्ध वोट करने वाले समुदायों के लोगों के मताधिकार को ही रद्द कर दें। अगर कुछ लाख मतदाताओं के साथ भी ऐसा हो जाता है, तो भाजपा ईवीएम के खेल के साथ बिहार चुनावों में जनादेश को चुरा सकती है और ऐसा पुख्ता शक़ ज़ाहिर किया जा रहा है कि गुंजाइश इसी बात की है। कई वीडियो सामने आ चुके हैं जिसमें बीएलओ के साथ भाजपा नेता इस प्रक्रिया को संचालित करने में घूम रहे हैं। इसके साथ ही कई बीएलओ तो बिना किसी ट्रेनिंग के ही यह काम कर रहे हैं। चुनाव आयोग ने बिना किसी तैयारी के ही भाजपा के इशारे पर इसकी घोषणा कर दी। मंशा पर गहरे सवाल खड़े होना जायज़ है। वैसे भी केचुआ (केन्द्रीय चुनाव आयोग) की कितनी विश्वसनीयता बची है, यह तो सारा देश जानता है। इस संस्था पर संघियों ने अन्दर से और गहराई से कब्ज़ा जमा लिया है, ठीक उसी प्रकार जैसे संघ परिवार ने राज्य के अन्य सभी उपकरणों पर भी आन्तरिक कब्ज़ा कर लिया है। "लोकचन्द्र" की फोटो भारतीय पूँजीवादी व्यवस्था की दीवारों से नहीं उतारी जायेगी, लेकिन लोकतन्त्र का कुछ बचता भी नहीं दिख रहा है।

चुनाव आयोग ने आनन-फानन में इस काम को करने की घोषणा कर दी है क्योंकि 3 महीने में बिहार में चुनाव होने वाला है। इस बार सत्ता में बैठी भाजपा-जदयू की नीतियों से राज्य की आम जनता त्रस्त हो चुकी है। यह डबल इंजन की सरकार महँगाई, बेरोज़गारी और ग़रीबी दूर करने में पूरी तरह से नाकाम साबित हुई है। इसके साथ ही भाजपा के मन्दिर-मस्जिद, हिन्दू-मुसलमान भारत-पाकिस्तान जैसे नक़ली मुद्दे भी विफल हो रहे हैं। इस परिस्थिति में चुनाव होने पर भाजपा का सत्ता में बने रहना कठिन होगा। ऐसी स्थिति में चुनिन्दा इलाक़ों में (जहाँ भाजपा को समर्थन न हो) लोगों को वोट देने से रोकने के लिए यह षड्यन्त्र किया जा रहा है, यह बात बहुत-से निष्पक्ष प्रेक्षक कह चुके हैं। भाजपा ने चुनाव की प्रक्रिया को रोके बग़ैर ही उसे अन्दर से खोखला कर देने के लिए यह क़दम उठाया है। यह फ़ासीवादी मोदी सरकार द्वारा राज्य के विभिन्न संस्थानों का आन्तरिक 'टेक ओवर' कर लेने की एक और बानगी है। आप खुद सोच सकते हैं कि यदि 3 करोड़ आबादी चुनाव की प्रक्रिया से बाहर हो जायेगी तो चुनाव कराने का क्या अर्थ रह जायेगा। यह "विशेष गहन पुनरीक्षण" केवल बिहार में ही नहीं बल्कि आने वाले समय में पश्चिम बंगाल में होने वाले विधानसभा चुनाव में भी भाजपा के लिए मददगार साबित होगा। वहाँ यह मुद्दा भाजपा के लिए सबसे बड़ा मुद्दा है। "घुसपैठिए और रिफ़्यूजी"

का नाम लेकर भाजपा अपनी चुनावी रोटी सेंकेगी। एक बार अगर बिहार में इसे लागू किया गया तो बंगाल में भी इसे लागू करने में उन्हें ज़्यादा तकलीफ़ नहीं होगी। कई निष्पक्ष प्रेक्षक व पत्रकार इस बाबत खुलासे कर चुके हैं कि पिछले कुछ सालों में चुनाव आयोग किस तरीक़े से वोटर लिस्ट में गड़बड़ी कर भाजपा को फ़ायदा पहुँचा चुका है। महाराष्ट्र और झारखण्ड चुनाव में पहले ही चुनाव आयोग पर कई सवाल उठ चुके हैं। पर अब भी आयोग पूरी शिद्दत के साथ भाजपा की सेवा में हाज़िर है। यह चुनाव आयोग के फ़ासीवादीकरण की बानगी है।

कार्टून : अभिषेक (राजस्थान पत्रिका) व सौरभ राय (न्यू इंडियन एक्सप्रेस)

चोर दरवाज़े से एनआरसी लागू करने की साज़िश

इस पूरी प्रक्रिया को लागू करने की असली मंशा पीछे के दरवाज़े से NRC को लागू करने की भी है। NRC के द्वारा देश की मेहनतकश जनता के एक विचारणीय हिस्से से उसकी नागरिकता छीनने की साज़िश मोदी सरकार ने 6 साल पहले ही रची थी लेकिन उस समय जनान्दोलनों के दबाव के कारण वह उसे लागू नहीं कर पाई थी। आज चुनाव आयोग द्वारा पिछले दरवाज़े से उसी NRC को लागू करने की कोशिश की जा रही है। इसके द्वारा लोगों से पहले वोट देने का अधिकार छीना जायेगा उसके बाद उसे विदेशी व घुसपैठिया साबित कर उसके सारे जनवादी अधिकारों को छीन लिया जायेगा। इस मौक़े पर भी देश की मुख्य धारा की मीडिया (गोदी मीडिया) सरकार के पक्ष में राय का निर्माण करने के अपने कर्तव्य को बख़ूबी निभा रही है। सुबह-शाम चीख-चीखकर मीडिया के एंकर इसे "देशहित" में बता रहे हैं।

इस पूरी प्रक्रिया पर देश की सुप्रीम कोर्ट ने सुनवाई की और चुनाव आयोग को "सुझाव" दिया है कि वह ज़रूरी काग़ज़ातों में आधार कार्ड को भी शामिल करे। इसकी अगली सुनवाई 28 जुलाई को होनी है। हालाँकि तब तक इस प्रक्रिया को रोकने के लिए भी सुप्रीम कोर्ट ने नहीं कहा है। हमें इस प्रक्रिया को वापस कराने हेतु न्यायालय के भरोसे नहीं बैठना चाहिए। हमें इस प्रक्रिया के द्वारा मोदी सरकार की इस साज़िश को बेपर्द करना होगा कि आज बिहार समेत पूरे देश में बेरोज़गारी, महँगाई, ग़रीबी के कारण लोगों की हालत बद से बदतर होती जा रही है। साथ ही मोदी सरकार राम मन्दिर, 5 ट्रिलियन इकॅनामी, साम्प्रदायिक दंगों आदि में लोगों को उलझाने में नाकाम साबित हो रही है। ऐसे में भाजपा ने एक और नकली मुद्दा देश के सामने खड़ा कर दिया है। मोदी सरकार चाहती है कि देश की जनता अपनी नागरिकता ही साबित करने में उलझी रहे तथा अपने असली मुद्दों को भूल जाए और इस तरह एक बार फ़िर अलग-अलग राज्यों में भाजपा अपनी चुनावी रोटी सेंकने में कामयाब हो जाए। हमें इस फ़ासीवादी हुक़ूमत के नापाक़ मंसूबों को समझना होगा और अपने असली मुद्दों पर एकजुट होना होगा।

1975 का आपातकाल और आज का अघोषित आपातकाल

● प्रसेन

25 जून को हमारे देश में इन्दिरा गाँधी सरकार द्वारा थोपे गये आपातकाल के 50 साल पूरे हो गये। आपातकाल के 50 साल पूरे होने पर काँग्रेस सरकार द्वारा लगाये गए आपातकाल को 'संविधान हत्या दिवस', 'लोकतन्त्र की हत्या' करने का सबसे ज़्यादा शोर आपातकाल में माफ़ी माँगने का इतिहास रचने वाले माफ़ीवीर संघ परिवार ने मचाया। जबकि मोदी के सत्तासीन होने बाद से फ़ासिस्टों ने बिना आपातकाल लागू किये आपातकाल के दौर के काले कारनामों को गुणात्मक तौर पर मीलों पीछे छोड़ दिया है। देश के मेहनतकशों को जानना चाहिये कि 1975 में आपातकाल क्यों लगाया गया था? आपातकाल लगने के बाद क्या हुआ था? मज़दूर वर्ग को यह तो ज़रूर ही जानना चाहिए कि आपातकाल के समय संघ परिवार की क्या भूमिका थी? और सबसे महत्वपूर्ण बात यह समझना है कि फ़ासीवादी भाजपा बिना आपातकाल लगाये जनविरोधी बर्बर कृत्यों को अंजाम देते हुए देश को जिस मरघट पर लाकर खड़ा कर दिया है, उसे हम किस तरह से देखें?

वास्तव में, आपातकाल की घटना को इन्दिरा गाँधी के व्यक्तित्व में या इन्दिरा गाँधी के चुनाव को उत्तर प्रदेश के उच्च न्यायालय द्वारा अवैध घोषित किये जाने और उसके बाद के राजनीतिक घटनाक्रम की तात्कालिकता में नहीं समझा जा सकता। हक़ीक़त यह है कि आज़ादी के बाद भारतीय शासक वर्ग ने पूँजीपति वर्ग के हित में जिस पब्लिक सेक्टर पूँजीवाद का रास्ता चुना था, उसका परिणाम 1960 के दशक तक आने लगा था। आज़ादी के शुरू के तीन दशकों के बाद भारतीय अर्थव्यवस्था लाभप्रदता गतिरोध यानी मुनाफ़े की औसत दर में ठहराव और गिरावट का शिकार हो रही थी। इसके अलावा 1960 के दशक में दो युद्धों (भारत-चीन, भारत-पाकिस्तान) से राजकोषीय घाटा बहुत बढ़ गया था। 1965 में भारत में सूखा पड़ा, जिसका नतीजा खाद्य संकट के रूप में आया। 1973 में 'लम्बी मंदी' शुरू हो चुकी थी। भारतीय अर्थव्यवस्था पर इसका काफ़ी असर था। इन सारी वजहों से 1970 के दशक तक पूँजीवादी व्यवस्था का आर्थिक संकट बहुत बढ़ गया था। इस आर्थिक संकट और काँग्रेस के कुशासन और आज़ादी के समय से जनता से किये गए वायदों से मुकरने के ख़िलाफ़ असन्तोष और मोहभंग सतह पर आना शुरू हो गया था। जनता का गुस्सा उभारों-आन्दोलनों के रूप में यहाँ-वहाँ फूटते हुए 1974 तक देशव्यापी बन चुका था। बिहार जैसे राज्यों में छात्रों-युवाओं का आन्दोलन, 1974 की 22 दिनों की रेल हड़ताल, जिसमें लगभग 27 लाख कर्मचारी शामिल हुए थे। 1967 के नक्सलबाड़ी किसान विद्रोह के भीषण राजकीय दमन से भी जनता का गुस्सा और बढ़ा। पूँजीवादी शासक वर्ग के शासन की वैधता पर जनता की निगाहों में सवाल खड़े हो चुके थे और स्वयं पूँजीपति वर्ग के शासक धड़े की आपसी एकजुटता डावाँडोल थी। इस तरह आर्थिक संकट इस समय तक आते-आते कई अन्तरविरोधों की गाँठ के पैदा होने के कारण एक राजनीतिक संकट में तब्दील हो गया।

इस संकट ने शासक वर्गों के बीच के अन्तरविरोधों-टकरावों को भी तीखा कर दिया था। इन्दिरा गाँधी और सत्तारूढ़ काँग्रेस का बड़ा हिस्सा इसे आम तौर पर संसदीय जनतन्त्र व खासकर काँग्रेस के शासन और इन्दिरा गाँधी के नेतृत्व के लिए एक खतरे के रूप में देख रहा था। जबकि जयप्रकाश नारायण और घुटे हुए बुर्जआ राजनीतिज्ञ इसे पूरी व्यवस्था के लिए चुनौती और चेतावनी के रूप में देख रहा था। इस संकट के कारण ही आनन-फ़ानन में भारत के पूँजीपति वर्ग के शासक धड़े ने इन्दिरा गाँधी की अगुवाई में एक ऐसी प्रतिक्रिया दी जो बहुत सुचिन्तित नहीं थी और जिसे समूचे शासक वर्ग यानी पूँजीपति वर्ग के हर हिस्से का पुरज़ोर समर्थन भी नहीं हासिल था। यह इस राजनीतिक संकट से निपटने का एक बहुत सुविचारित और प्रभावी रास्ता नहीं था और बाद में शासक वर्ग ने इस बात को समझा भी।

बहरहाल, आपातकाल लागू होने के बाद पूरे देश में सरकार के विरोधियों/आलोचकों का भयंकर दमन किया गया, जनता के सारे मौलिक अधिकार, यहाँ तक कि जीने का अधिकार तक छीन लिया गया। चारों तरफ़ आतंक का माहौल क़ायम किया गया था। प्रेस की स्वतन्त्रता छीन ली गयी थी। सामाजिक, राजनीतिक कार्यकर्ताओं, पत्रकारों और हज़ारों बेगुनाह लोगों को जेलों में ठूँस दिया गया। लोगों को जेलों में यातनाएँ दी गयीं। जब एक तरफ़ आधी रात को राजनीतिक नेताओं को नज़रबन्द किया जा रहा था, वहीं आन्ध्र प्रदेश में छात्र नेताओं और राजनीतिक कार्यकर्ताओं पर नक्सलवाद के नाम पर दमन का पाटा चलाया जा रहा था। 'मीसा' जैसे क़ानूनों के तहत हज़ारों लोग जेलों में बन्द थे। देश के उत्तरी भाग में झुग्गी-झोपड़ियों को ध्वस्त करने, अतिक्रमण हटाने और जबरन नसबन्दी की घटनाओं के अलावा आन्ध्रप्रदेश में मुठभेड़ों में हत्याएँ हो रही थीं।

इस चर्चा के बाद यह देखना बहुत दिलचस्प होगा कि इस समय संघ परिवार के शूरवीर क्या कर रहे थे? क्या वे आपातकाल के ख़िलाफ़, इन्दिरा सरकार की तानाशाही के ख़िलाफ़ लड़ रहे थे? जी नहीं! संघ परिवार के शूरवीर घुटनों के बल इन्दिरा गाँधी से क्षमायाचना कर रहे थे। आरएसएस के तत्कालीन सरसंघचालक बालासाहब देवरस ने 22 अगस्त 1975 को इन्दिरा गाँधी को लिखे अपने पहले पत्र में उनके 15 अगस्त के भाषण की भूरि-भूरि प्रशंसा की। ग़ौरतलब है कि इन्दिरा गाँधी ने 15 अगस्त को स्वतन्त्रता दिवस पर अपने भाषण में आपातकाल लगाने को सही ठहराया था। देवरस ने लिखा कि आरएसएस हिन्दुओं का संगठन बनाने की कोशिश कर रहा है, लेकिन वह कभी भी उनकी सरकार के ख़िलाफ़ नहीं है।

उच्चतम न्यायालय द्वारा इलाहाबाद उच्च न्यायालय के फ़ैसले को पलटकर इन्दिरा गाँधी के चुनाव को वैध ठहराने का फ़ैसला आने पर देवरस ने दूसरा क्षमापत्र लिखा। 10 नवम्बर 1975 को इन्दिरा गाँधी को लिखे अपने दूसरे पत्र में देवरस ने सुप्रीम कोर्ट में जीत के लिए उन्हें बधाई देते हुए शुरुआत की: "मुझे आपको बधाई देने दीजिए क्योंकि उच्चतम न्यायालय के पाँच न्यायाधीशों ने आपके चुनाव की वैधता घोषित कर दी है। पत्र के अन्त में उन्होंने एक बार फिर उनसे आरएसएस पर प्रतिबन्ध हटाने के लिए कहा: "लाखों आरएसएस कार्यकर्ताओं के निःस्वार्थ प्रयासों का इस्तेमाल सरकार के विकास कार्यक्रमों को आगे बढ़ाने के लिए किया जा सकता है।"

इन दोनों पत्रों को इन्दिरा गाँधी द्वारा नज़रन्दाज़ कर देने के बाद देवरस ने तीसरा पत्र लिखकर विनोबा भावे से सिफ़ारिश की कि वे इन्दिरा गाँधी को इसके लिए राज़ी करें। क्योंकि इन्दिरा गाँधी का विनोबा के आश्रम में जाने का कार्यक्रम था। देवरस ने भावे से विनती की कि वे आरएसएस के पक्ष में हस्तक्षेप करें और इन्दिरा गाँधी को प्रतिबन्ध हटाने के लिए राज़ी करें। इसके अलावा आरएसएस के बड़े नेताओं में अटल बिहारी वाजपेयी के माफ़ीनामे से बहुत से लोग परिचित हैं। यही नहीं, उत्तर प्रदेश भारतीय जनसंघ ने 25 जून, 1976 को (आपातकाल की घोषणा की पहली वर्षगाँठ पर) सरकार को पूर्ण समर्थन की घोषणा की और किसी भी सरकार विरोधी गतिविधि में भाग न लेने का भी वचन दिया। उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश में भारतीय जनसंघ के 34 नेता कांग्रेस में शामिल हो गए। इसका नतीजा यह हुआ आरएसएस का सरकार के साथ एक समझौता हुआ और जनवरी 1977 के अन्त में आत्मसमर्पण दस्तावेज़ पर हस्ताक्षर करने का निर्णय लिया। लेकिन चूँकि उसके पहले ही आपातकाल हटा लिया गया इसलिए आत्मसमर्पण के दस्तावेज़ पर हस्ताक्षर करने की आवश्यकता नहीं पड़ी।

इन तथ्यों से स्पष्ट है कि आरएसएस जिस तरह सावरकर के माफ़ीनामे को छुपाने के लिए झूठ का अम्बार खड़ा करती है वैसे ही आपातकाल के दौरान अपने घृणित कायराना कृत्यों को छुपाने के लिए अब झूठ का पहाड़ खड़ा कर रही है। सच्चाई यह है कि जो काम आरएसएस और उनके नेताओं ने अंग्रेज़ों के समय में किया था, वही काम आरएसएस और उनके नेताओं ने आपातकाल के दौरान भी किया यानी-माफ़ीनामा और दमन में सरकार का साथ देना! वास्तव में, मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी और छात्रों-युवाओं के बीच मौजूद क्रान्तिकारी एक्टिविस्ट सबसे बहादुरी के साथ लड़ रहे थे, आपातकाल का विरोध कर रहे हैं, दमन-उत्पीड़न झेल रहे थे और यहाँ तक कि शहादतें भी दे रहे थे। इनमें क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट सबसे आगे थे, जो जनता के हक़ों पर हो रहे हमलों का ज़बर्दस्त प्रतिरोध कर रहे थे। दूसरी ओर, आरएसएस कायरता के साथ अपनी माँद में दुबक गयी थी और उसके नेता शर्मनाक माफ़ीनामे लिख रहे थे। आज भाजपा की मोदी-शाह सरकार और भाजपाई आपातकाल के 50 वर्षों के पूरे होने पर सियारों की तरह हुआँ रहे हैं कि आपातकाल लागू करके इन्दिरा गाँधी और कांग्रेस ने कितना ज़ुल्म किया। लेकिन ये ख़ुद उस समय माफ़ीनामों के बण्डल पर बैठकर इन्दिरा गाँधी के नाम कसीदे पढ़ रहे थे।

भारत के फ़ासिस्टों के इस झूठ को जानने के बाद इस पर बात करना बहुत ज़रूरी है कि घोषित आपातकाल की जगह पर वर्तमान समय में खासकर भाजपा के सत्तारोहण के बाद जो अघोषित आपातकाल पूरे देश में लागू है, वह किन अर्थों में 1975 के आपातकाल से कई गुना ख़तरनाक, बर्बर और जनविरोधी है।

सबसे पहला तो यह है कि बुर्जुआ संविधान द्वारा जो भी सीमित लोकतान्त्रिक अधिकार जनता को मिले थे, आरएसएस/भाजपा ने शासन-प्रशासन की मशीनरी पर आन्तरिक कब्ज़े के ज़रिये उसे जनता के लिए काफ़ी हद तक बेमानी बना चुकी है। मोदी युग में बुर्जुआ लोकतन्त्र की सभी संस्थाओं को अधिक से अधिक अप्रासंगिक बना दिया गया है। संसद में विपक्ष को पंगु बना दिया गया है। जिसमें विपक्ष की अपनी निष्क्रियता के अलावा विपक्ष के सांसदों को मनमाने ढंग से निलम्बित करने जैसे दमनात्मक क़दम भी ज़िम्मेदार है। राज्य-तन्त्र, विशेष रूप से नौकरशाही, सेना, पुलिस और निर्वाचन आयोग, ईडी, सीबीआई जैसी संस्थाओं पर आरएसएस और भाजपा ने आन्तरिक कब्ज़ा कर लिया है। चुनावों में न केवल चुनाव आयोग भाजपा द्वारा नियमों की धज्जियाँ उड़ाते देखता रहता है बल्कि अपने आन्तरिक कब्ज़े के दम पर भाजपा ईवीएम मशीनों के ज़रिये धाँधली करती है। तमाम ठोस सबूतों के बावजूद न तो चुनाव आयोग इस कान देता है और न ही न्यायालय। पुलिस प्रशासन भाजपा के ख़िलाफ़ वोट देने वाले मतदाताओं को बूथ पर पहुँचने से खुलेआम रोकती है। लेकिन इस पर चुनाव आयोग, न्यायालय आँख बन्द कर लेता है। अभी एक नए फ़ासीवादी हमले के तहत बिहार विधानसभा चुनाव के कुछ ही महीने पहले आनन-फ़ानन में चुनाव आयोग ने बीते 24 जून को एक अधिसूचना जारी की जिसके अनुसार वह बिहार में मतदाता सूची का विशेष गहन निरीक्षण करेगी। इसके तहत अब बिहार के हर मतदाता को यह साबित करना होगा कि वे यहाँ के नागरिक हैं। ऐसे काग़ज़ दिखाने होंगे जिससे चुनाव आयोग सन्तुष्ट हो जाय अन्यथा उन्हे वोट करने के अधिकार से वंचित कर दिया जाएगा। यानी भाजपा का नारा है कि इस क़वायद के ज़रिये पहले वह वोटरों को चुनेगी और फिर वोटर उसे चुनेंगे!

नौकरशाही और सेना में फ़ासीवादियों की घुसपैठ ने भी पिछले सारे रिकॉर्ड ध्वस्त कर दिए हैं। हाल ही में सरकार ने प्रशासनिक सेवकों को आरएसएस की गतिविधियों में भाग लेने की अनुमति देकर इस काम को और आसान बना दिया है। यही नहीं, प्रशासनिक सेवाओं में हिन्दुत्ववादी नज़रिया रखने वाले लोगों की घुसपैठ सुनिश्चित कराने के लिए प्रतियोगी परीक्षाओं में व्यवस्थित तरीक़े से धाँधली की जा रही है।

मोदी सरकार के 10 सालों में न्यायपालिका में फ़ासिस्टों की घुसपैठ अभूतपूर्व है। धर्मनिरपेक्षता, नागरिकता, नागरिक और जनवादी अधिकारों से सम्बन्धित महत्वपूर्ण मुद्दों पर न्यायपालिका ने या तो सरकार के हिन्दुत्ववादी एजेंडे का पक्ष लिया है या फिर विवादग्रस्त मुद्दों से किनारा कर सरकार के लिए आसानी पैदा किया है। अयोध्या का फ़ैसला, 2015 में एनआरसी के प्रकाशन का निर्देश, 2021 में उच्चतम न्यायालय द्वारा रोहिंग्याओं के निर्वासन की अनुमति, 2022 में मोदी को गुजरात नरसंहार में मिलीभगत से दोषमुक्त करने आदि मामले ग़ौरतलब हैं। इसके अलावा, वर्तमान फ़ासीवादी शासन के तहत न्यायाधीशों की सेवानिवृत्ति के बाद की नियुक्तियाँ आम हो चुकी हैं। सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश पी. सदाशिवम को उनकी सेवानिवृत्ति के लगभग तुरन्त बाद केरल का राज्यपाल नियुक्त किया था। फासीवादियों ने न्यायमूर्ति रंजन गोगोई को अयोध्या और राफेल फैसलों में उनकी भूमिका के लिये सांसद के पद से भी नवाज़ा था। अयोध्या का फैसला सुनाने वाली पीठ में शामिल दो अन्य न्यायाधीशों, न्यायमूर्ति अब्दुल नज़ीर और न्यायमूर्ति अशोक भूषण को भी क्रमशः आन्ध्र प्रदेश के राज्यपाल और राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण के अध्यक्ष के आकर्षक पदों से पुरस्कृत किया गया। सोहराबुद्दीन मुठभेड़ प्रकरण में अमित शाह के ख़िलाफ़ एक मामले की सुनवाई कर रहे महाराष्ट्र उच्च न्यायालय के न्यायाधीश न्यायमूर्ति बी.एच. लोया की रहस्यमयी मृत्यु के बारे में सभी परिचित हैं। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि न्यायमूर्ति लोया की जगह लेने वाले एक न्यायाधीश ने अमित शाह को निर्दोष करार दे दिया और सर्वोच्च न्यायालय ने न्यायमूर्ति लोया की मौत की आगे की जाँच करने की याचिका को स्वीकार करने से इनकार कर दिया। अभी ताज़ा घटनाक्रम के तहत सुप्रीम कोर्ट ने मोदी और संघ परिवार पर कार्टून

1975 का आपातकाल और आज का अघोषित आपातकाल

(पेज 13 से आगे)

बनाने वाले कार्टूनिस्ट को फटकार लगाते हुए इसे स्वतन्त्रता के अधिकार का दुरुपयोग बताया है।

वर्तमान दौर में शिक्षा व्यवस्था में फ़ासीवादी घुसपैठ नयी ऊँचाइयों पर जा पहुँची है। अब यह केवल पाठ्यक्रमों में बदलाव और मिथकों को बढ़ावा देने तक सीमित नहीं है। नयी शिक्षा नीति-2020 भाजपा के साम्प्रदायिक एजेण्डा को ध्यान में रखकर बनायी गयी है। JNU और FTII जैसी संस्थानों पर फ़ासीवादी हमले भी अकादमिक जगत में संघियों के घुसपैठ के मद्देनज़र ही किये गये थे। आरएसएस के लोगों को सचेतन रूप से UGC, NAAC, ICHR, NCERT, NTA जैसे संस्थानों में नियुक्त किया जा रहा है। विश्वविद्यालयों में बहुत-सी जगह छात्रसंघ चुनाव बैन है। प्रगतिशील छात्र संगठनों की किसी भी तरह की गतिविधि को या तो सीधे रोक दिया जाता है या संघी प्रशासनिक अधिकारियों द्वारा नियमों के जाल में उलझा दिया जाता है। विश्वविद्यालय आरएसएस/भाजपा के कार्यक्रमों का मंच बन गया है।

कला, संस्कृति का इस्तेमाल हिन्दुत्व की विचारधारा फैलाने में ज़बरदस्त तरीक़े से किया जा रहा है। हिटलर द्वारा सिनेमा को फ़ासीवादी प्रोपेगैण्डा के उपकरण के तौर पर इस्तेमाल करने से प्रेरणा लेते हुए हिन्दुत्व फ़ासीवादी भी ढेर सारी प्रोपेगैण्डा फिल्म जैसे **वीर सावरकर, जहाँगीर नेशनल यूनिवर्सिटी, आर्टिकल 370, सिंघम रिटर्न्स, सूर्यवंशी, कल्कि,** आदि को प्रमोट कर रहे हैं जिनमें हिन्दुत्व का प्रचार और सीधे या घुमा-फिराकर मुस्लिम जनता के ख़िलाफ़ साम्प्रदायिक ज़हर हिन्दू आबादी में भरा जा रहा है।

विभिन्न क्षेत्रों के लोक कलाकारों और संगीतकारों को सचेतन तौर पर संघ परिवार के घृणा फैलाने वाले एजेण्डा के लिए इस्तेमाल किया जा रहा है। मोदी काल में सन्दीप देव, कमल आग्नेय और कवि सिंह जैसे हिन्दुत्व पॉप स्टार्स उभरे हैं जो ज़हरीला मुस्लिम-विरोधी संगीत तैयार कर रहे हैं और वे यूट्यूब व सोशल मीडिया पर बेहद लोकप्रिय भी हो रहे हैं।

आपातकाल के दौर में प्रेस की स्वतन्त्रता छीन ली गयी थी लेकिन मोदी के अघोषित आपातकाल में मुख्य धारा की मीडिया मोदी सरकार की भोंपू बन गयी है जो दिन-रात मोदी सरकार का झूठा गुणगान करने के अलावा जनता का ध्यान भटकाने के लिए साम्प्रदायिकता और अन्धराष्ट्रवाद का ज़हर उगलता रहता है। ऐसे सभी पत्रकार जो मोदी की ज़रा सी भी आलोचना करते हैं उन्हें मुख्यधारा की मीडिया से बाहर जाने के लिए मजबूर कर दिया गया है और लगतार धमकी और प्रताड़ना की वजह से वे वैकल्पिक मीडिया और यूट्यूब की शरण में जा रहे हैं। अब फ़ासिस्ट सत्ता वैकल्पिक मीडिया प्लेटफॉर्म्स को भी निशाना बना रही है क्योंकि सोशल मीडिया और यूट्यूब की सामग्री की पहुँच व्यापक हो चुकी है, गोदी मीडिया चैनलों को देखना जनता बन्द कर रही है।

फ़ासिस्ट मोदी सरकार के 10 साल ने मुस्लिम समुदाय को शैतान के रूप में पेश करना सुनिश्चित किया है और मुस्लिम-विरोधी नफरती भाषण एवं घृणा व अपराध नयी ऊँचाइयों पर जा पहुँची है। संघ परिवार ने अपनी तमाम संस्थाओं, मुख्यधारा की मीडिया, सोशल मीडिया तथा व्हाट्सऐप के ज़रिये समाज में लगातार मुस्लिम-विरोधी नफ़रती भाषण तथा डिजिटल सामग्री फैला रहा है। लव जिहाद, लैण्ड जिहाद, वोट जिहाद जैसे झूठों को इन माध्यमों के ज़रिये बार-बार अन्तहीन रूप से फैलाया जा रहा है ताकि मध्य वर्गों की सामाजिक-आर्थिक तथा पितृसत्तात्मक असुरक्षाओं का लाभ उठाते हुए इन झूठों को एक व्यापक परिघटना के रूप में स्वीकार्य बनाया जा सके और हिन्दु जनता तथा मुस्लिम जनता के बीच एक निरन्तर तनाव की स्थिति बनी रहे। मुस्लिम-विरोधी नफ़रती भाषण अब उस मुक़ाम तक जा पहुँचे है कि अब तथाकथित धर्मसंसदों में खुले आम मुस्लिम जनता का नरसंहार करने का आह्वान किया जा रहा है। मोदी के कार्यकाल में हिन्दू त्योहारों को साम्प्रदायिकता फैलाने के उपकरण के तौर पर इस्तेमाल किया जा रहा है। राम नवमी आदि त्योहारों पर जानबूझकर मुस्लिम बहुल इलाक़ों से जुलूस निकाला जाता है। जानबूझ कर उकसाने की कोशिश की जाती है। दंगा भड़कने की स्थिति में पुलिस प्रशासन मुसलमानों पर ही कार्यवाई करती है। आँकडों के मुताबिक मोदी सरकार के 2017 तक के कार्यकाल में 2920 दंगे हुए, जिसमें 389 लोगों की मौत हुई और 8890 लोग घायल हुए।

मोदी के कार्यकाल का एक अन्य पहलू सड़क की हिंसा में अभूतपूर्व बढ़ोतरी है क्योंकि फ़ासिस्ट गुण्डों को खुला हाथ दे दिया गया है। पंसारे, कलबुर्गी और गौरी लंकेश जैसे तर्कवादियों की नृशंस हत्या इसके कुछ उदाहरण हैं। इसके अतिरिक्त नवउदारवाद और हिन्दुत्व के ज़हरीले मिश्रण से समाज में प्रतिक्रियावादी ताकतें स्वतःस्फूर्त ढंग से समाज में हिंसा को बढ़ा रही है जो गोहत्या के नाम पर मुस्लिम लोगों की मॉब लिंचिंग और दलितों, आदिवासियों तथा महिलाओं के ख़िलाफ़ बढ़ते अपराधों के रूप में सामने आ रही है। रोहित वेमुला की सांस्थानिक हत्या और ऊना घटना ने यह स्पष्ट रूप से दिखाया था कि संघ परिवार की गहरी जाति-विरोधी मानसिकता किस प्रकार की त्रासदियों को जन्म दे सकती है। उन्नाव, कठुआ, हाथरस में बलात्कार की बर्बर घटनाएँ और बृजभूषण शरण सिंह व प्रज्वल रेवन्ना व बिल्किस बानो के बलात्कारियों जैसे सीरियल यौन-उत्पीड़कों और बलात्कारियों को राजनीतिक शह देना हिन्दुत्व फ़ासिस्ट सत्ता के पितृसत्तात्मक चरित्र की साक्ष्य है। आँकडों के मुताबिक़ देश में 2010 से लेकर 2017 के बीच मॉब लिंचिंग की 63 घटनायें हुई, जिसमें 28 लोगों की पीट-पीटकर हत्या कर दी गई। इन घटनाओं में 52 फ़ीसदी अफ़वाहों पर आधारित थीं। मॉब लिंचिंग की 63 घटनाओं में से 32 घटनाएँ गायों से सम्बन्धित थी, और अधिकतर मामलों में राज्य में बीजेपी सत्ता में थी। इन दिल दहला देने वाली 63 घटनाओं में मरने वाले 28 लोगों में से 86 फ़ीसदी यानी कि 24 मुस्लिम थे। इन घटनाओं में कुल 124 लोग ज़ख़्मी हुए। साल 2018 से 2022 के बीच अनुसूचित जाति के ख़िलाफ़ अपराध के 2,47,527 मामले दर्ज हुए। वहीं, साल 2018 से 2022 के बीच अनुसूचित जनजाति के ख़िलाफ़ अपराध के 41,236 मामले दर्ज हुए। इस दौरान अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के ख़िलाफ़ अपराध में क्रमश 34.5 प्रतिशत और 54.1 प्रतिशत की बढ़ोतरी हुई। इसी तरह एनसीआरबी के आँकडों के मुताबिक़ महिलाओं के ख़िलाफ़ अपराधों की कुल संख्या 2014 के 3,37,922 से बढ़कर 2020 में 3,71,503 हो गई। इस रिपोर्ट के मुताबिक़ प्रति लाख जनसंख्या पर महिलाओं के ख़िलाफ़ अपराध 2014 के 56.3 प्रतिशत से बढ़कर 2022 में 66.4 प्रतिशत हो गई।

मोदी के अघोषित आपातकाल का एक अन्य आयाम शत्रु की परिभाषा को मुस्लिम से विस्तृत कर उन सभी को शामिल करने का है, जो सरकार से सवाल उठाने की जुर्रत करते हैं। फ़ासिस्टों द्वारा एण्टी-नेशनल या अर्बन नक्सल इसी से पैदा हुई संज्ञाएँ हैं। भीमा कोरेगाँव मामले में मानवाधिकार कार्यकर्ताओं और जेएनयू के छात्र उमर खालिद को फ़र्जी मामलों में गिरफ़्तार करना तथा फादर स्टैन स्वामी तथा प्रो. जी.एन. साईबाबा की संस्थानिक हत्याएँ यह दिखाती है कि फ़ासिस्ट अपने आलोचकों को शान्त कराने के लिए किस हद तक जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त फ़ासिस्टों ने मोदी काल में अपने कम्युनिस्ट-विरोधी प्रचार तेज कर दिया है क्योंकि उन्होंने इतिहास से सीखा है कि केवल कम्युनिस्ट ही उनसे सुसंगत, जुझारू और प्रभावी लड़ाई लड़ सकते हैं और उन्हें हरा सकते हैं।

वास्तव में जिन फासिस्ट गुण्डा-वाहिनियों को आज हिंसा की खुली छूट देकर अल्पसंख्यक आबादी व आम जनता को आतंकित करने के लिए इस्तेमाल किया जा रहा है, उसका असली निशाना क्रान्तिकारी मज़दूर वर्ग है और उसे कालान्तर में उसी के विरुद्ध इस्तेमाल करने के लिए तैयार किया जा रहा है। यह बात हम मज़दूरों को बहुत अच्छी तरह से समझ लेने की ज़रूरत है। निश्चित तौर पर, आज उनके निशाने पर मुख्य तौर पर मुसलमान, प्रगतिशील बुद्धिजीवी, जनवादी अधिकार कार्यकर्ता, छात्र-युवा कार्यकर्ता मुख्य तौर पर हैं, लेकिन जैसे ही मज़दूर वर्ग प्रतिरोध के लिए संगठित होना शुरू करेगा, वैसे ही इन आतंकी गिरोहों का इस्तेमाल सबसे पहले मज़दूरों और उनका नेतृत्व करने वाले क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के विरुद्ध किया जायेगा। इसके लिए फ़ासिस्ट स्वयं वर्ग-चेतना से रहित और विमानवीकरण का शिकार हो चुके लम्पट मज़दूरों-मेहनतकशों और लम्पट टुटपुँजिया आबादी का ही इस्तेमाल करते हैं। इसका मुक़ाबला मज़दूर वर्ग अपने आपको एक सर्वहारा वर्ग के तौर पर, यानी राजनीतिक चेतना से लैस वर्ग के तौर पर संगठित करके और साथ ही व्यापक मेहनतकश जनता को संगठित करके ही कर सकता है।

अंग्रेज़ों की कुख्यात दण्ड संहिता में संशोधन कर उसे और दमनकारी रूप देते हुए 'भारतीय दण्ड संहिता' लायी जा चुकी है। सरकार के ख़िलाफ़ बोलने वाले मानवाधिकार कार्यकर्ताओं, पत्रकारों, बुद्धिजीवियों, राजनीतिक कार्यकर्ताओं पर फ़र्जी मुक़दमे और जेल आम बात है। यूएपीए के तहत बहुत से निर्दोष जेलों में सड़ रहे हैं। आँकडों के मुताबिक़ यूएपीए के तहत 2018 और 2020 के बीच 4,690 लोगों को गिरफ्तार किया गया, लेकिन केवल 3 प्रतिशत लोगों पर ही दोषसिद्ध हो सका। जमानत न मिल सकने के कारण बहुत बड़ी संख्या में लोग जेलों में पड़े रहते हैं। 2018 और 2020 के बीच उत्तर प्रदेश में यूएपीए के तहत दोषी ठहराए गए 1,338 व्यक्तियों में से केवल 6 प्रतिशत को ही दोषी ठहराया गया, जबकि अन्य 94 प्रतिशत में से किसी को भी जमानत नहीं मिली।

मज़दूरों की मेहनत को लूटने में पूँजीपतियों को बाधा न आये इसलिए 'चार नये लेबर कोड' तैयार हैं और गुजरात में इस दिशा में अमल भी शुरू कर दिया गया है। अभी हाल ही गुजरात में फैक्ट्री क़ानून में संशोधन कर अब मज़दूरों से 12 घण्टे काम करवाने की तैयारी की जा चुकी है। ऐसे क़दम कई प्रदेशों में उठाये जा चुके हैं, जिनमें से कुछ कांग्रेस-शासित राज्य भी हैं! मज़दूरों के शोषण की दर और सघनता को बढ़ाने के मामले में सारी पूँजीवादी पार्टियाँ सहमत हैं क्योंकि पूँजीपति वर्ग मन्दी से बिलबिलाया हुआ है। देश में मोदी सरकार द्वारा निजीकरण का बुलडोज़र सारे सरकारी विभागों को रौंद रहा है। रेल, बिजली, बैंक, शिक्षा, चिकित्सा विभाग तेज़ी से निजीकरण की भेंट चढ़ते जा रहे हैं। मोदी सरकार के कार्यकाल में नव उदारवादी ज़ोर को इसी से समझा जा सकता है कि 1991 से अब तक कुल विनिवेश का क़रीब 72 प्रतिशत मोदी सरकार के 10 सालों में हुआ है। कर्मचारियों के हक़ की लड़ाई और आम तौर पर विरोध प्रदर्शन को रोकने के लिए एस्मा और शान्ति भंग की धाराओं के अलावा आन्दोलनकारियों पर फ़र्जी मुक़दमों का ज़बरदस्त इस्तेमाल किया जा रहा है।

इन घटनाओं, तथ्यों और आँकडों की रोशनी में सहज ही समझा जा सकता है कि 1975 के आपातकाल की तुलना में वर्तमान दौर का अघोषित आपातकाल कितना भयानक है! वास्तव में, इस गुणात्मक अन्तर को हम आपातकाल के दौर में और वर्तमान दौर में आर्थिक संकट और उससे पैदा होने वाले राजनीतिक संकट को हल करने वाली सत्ता के अन्तर में देख सकते हैं। इन्दिरा गाँधी के समय का आर्थिक संकट वर्तमान आर्थिक संकट जैसा नहीं था न ही इन्दिरा गाँधी के नेतृत्व में काँग्रेस कोई फ़ासिस्ट शक्ति थी। आपातकाल का निर्णय सत्तारूढ़ शासक वर्ग का जल्दबाज़ी और अपरिपक्वता भरा का निर्णय था जिसका समाहार बुर्जुआ वर्ग ने उसके बाद ही कर लिया था। वर्तमान दौर का आर्थिक संकट दीर्घकालिक मंदी का संकट है जो 1970 के दशक में बस शुरू ही हुई थी। इससे पैदा होने वाले राजनीतिक संकट को हल करने के लिए ही आज पूँजीपति वर्ग की ज़रूरतों के अनुसार फ़ासीवादी ताकतें सत्ता में है। आज के दौर का फ़ासीवाद 20वीं सदी के शुरुआती दशकों वाला फ़ासीवाद नहीं है जिसकी पहचान आपवादिक कानूनों के ज़रिये बुर्जआ जनवाद के रूप का ही उन्मूलन किये जाने से की जा सकती हो। फ़ासीवादी राज्य-परियोजना अब किसी घटना का रूप नहीं लेती बल्कि एक सतत और निरन्तर जारी परियोजना का रूप लेती है जो कभी पूर्ण नहीं होती। इस दौर में फ़ासीवाद एक लम्बी प्रक्रिया में, राज्य-उपकरण पर आन्तरिक कब्ज़े और समाज में आणविक व्याप्ति के ज़रिये उभरता है। साम्राज्यवाद के नवउदारवादी दौर में बुर्जआ जनवाद का इस हद तक क्षरण हो चुका है कि फ़ासीवादी शक्तियाँ बिना पूँजीवादी लोकतन्त्र के खोल और संविधान को खत्म किये बगैर बड़े बुर्जआ वर्ग द्वारा उन्हें सौंपे कार्यभार को पूरा कर सकती हैं। इसके अलावा फ़ासीवादी ताकतों ने भी अपने ऐतिहासिक अनुभवों और साथ ही नयी राजनीतिक परिस्थिति और सामाजिक-आर्थिक स्थितियों का समाहार किया है। पिछले सात और विशेष तौर पर पिछले चार दशकों में फ़ासीवादी शक्तियों ने राज्य-मशीनरी और समाज में इस क़दर आन्तरिक पकड़ बनायी है कि किसी वजह सरकार से बाहर जाने की सूरत में राज्यसत्ता और समाज में फ़ासीवादियों की पकड़ बनी रहेगी और दीर्घकालिक संकट के समूचे दौर में वे बार-बार और आम तौर पर पहले से ज़्यादा आक्रामकता के साथ वापसी करते रहेंगे। इस वजह से 1975 के आपातकाल की तुलना में वर्तमान दौर का अघोषित आपातकाल जनता के लिए कई गुना यन्त्रणादायी और दीर्घकालिक है और इसीलिए फ़ासीवाद का ध्वंस भी बहुत सचेत और लम्बी तैयारी की माँग करता है। फ़ासीवाद मज़दूर वर्ग का सबसे बड़ा दुश्मन है और इसे ज़मींदोज़ करने के लिए आज के फ़ासीवाद की विशिष्टताओं को हमें समझना होगा और उसके अनुसार ही अपनी लड़ाई रणनीति और आम रणकौशल को तय करना होगा।

क्रान्तिकारी मज़दूर शिक्षणमाला – 28

मार्क्सवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र के सिद्धान्त (खण्ड-2)

अध्याय – 2

पूँजी के परिपथ – II

● अभिनव

उत्पादक-पूँजी का परिपथ

पिछले अध्याय में मुद्रा-पूँजी के परिपथ पर चर्चा के समय ही हमने देखा कि जब हम औद्योगिक पूँजी के परिपथ के इस प्रातिनिधिक रूप का अध्ययन निरन्तरता में करते हैं, तो हम पाते हैं कि उसके दुहराव के साथ पूँजी के परिपथ के दो अन्य रूप भी उभरकर सामने आते हैं। पहला है **उत्पादक-पूँजी का परिपथ** और दूसरा है **माल-पूँजी का परिपथ**। मुद्रा-पूँजी का परिपथ उद्यमी पूँजी के **उद्देश्य** को स्पष्ट तौर पर सामने लाता है, यानी 'पैसे से और ज़्यादा पैसे बनाना'। यानी, मुद्रा की एक निश्चित मात्रा का पूँजी के रूप में निवेश कर उसके ऊपर मुनाफ़ा हासिल करना। लेकिन अपने आप में यह परिपथ मुद्रा से ही शुरू होता है और मुद्रा की पहले से ज़्यादा मात्रा पर समाप्त हो जाता है : M – C … P … C' – M'. इसके आगे पूँजीपति पहले जितनी मुद्रा-पूँजी का ही निवेश करता है या वह पूँजी का संचय करता है, बेशी मूल्य के एक हिस्से को या समूचे बेशी मूल्य को पूँजी में तब्दील कर पहले से ज़्यादा पूँजी का निवेश करता है, या वह संचित बेशी मूल्य को किसी और धन्धे में लगा देता है, यानी पुनरुत्पादन किन स्थितियों में होता है (या नहीं हो पाता है) इसकी व्याख्या हम महज़ मुद्रा-पूँजी के परिपथ के आधार पर ही नहीं कर सकते हैं। वजह यह कि यह परिपथ, यानी मुद्रा-पूँजी का परिपथ, उत्पादन की प्रक्रिया को **अपने आप में** पुनरुत्पादन की प्रक्रिया के रूप में नहीं पेश करता है। केवल मुद्रा-पूँजी के परिपथ को दुहराव में देखकर ही हम उत्पादक-पूँजी के परिपथ की पहचान कर पाते हैं और उसके अध्ययन के आधार पर ही पुनरुत्पादन की प्रकृति से जुड़े प्रश्नों का सुसंगत रूप में उत्तर दिया जा सकता है।

इसके अलावा, मुद्रा-पूँजी के परिपथ का एक विचारधारात्मक चरित्र भी होता है, यानी यह कुछ छिपा देता है। वह क्या चीज़ है जिसे यह प्रकट नहीं करता? मुद्रा-पूँजी के परिपथ की शुरुआत मुद्रा की एक निश्चित मात्रा से होती है, जिसका पूँजीपति निवेश करता है। यह मुद्रा-पूँजी स्वयं कहाँ से आयी, पूँजीपति के पास कहाँ से पहुँची और पूँजीवादी उत्पादन की जारी प्रक्रिया में उसका मूल स्रोत क्या होता है, इसकी कोई पड़ताल मुद्रा-पूँजी का परिपथ नहीं करता है। लेकिन उत्पादक-पूँजी का परिपथ इस रहस्य का उद्घाटन कर देता है और इस रूप में मार्क्स के ही शब्दों में उत्पादक-पूँजी का परिपथ "रूप-I (यानी मुद्रा-पूँजी के परिपथ) की एक आलोचना पेश करता है" (*वही*, पृ. 154, *अनुवाद हमारा*)

उपरुल्लिखित कारणों के चलते उत्पादक-पूँजी के परिपथ का विस्तृत अध्ययन हमारे लिए महत्वपूर्ण हो जाता है।

बेशी मूल्य के पूँजीकरण होने या न होने की स्थिति को नज़रन्दाज़ कर दें तो उत्पादक-पूँजी के परिपथ का आम सूत्र कुछ इस प्रकार है:

P … C' – M' – C … P

इसी को विस्तारित रूप में लिखें तो वह इस प्रकार दिखायी देता है:

$$P \ldots C' - M'.\ M - C <^{L}_{mp} \ldots P$$

अभी हम यह प्रश्न नहीं उठा रहे हैं कि मुनाफ़े समेत अपनी पूँजी मुद्रा-रूप में वापस प्राप्त करने के बाद पूँजीपति समूचे बेशी मूल्य का ख़ुद व्यक्तिगत उपभोग कर लेता है या फिर उसे पूरा या आंशिक तौर पर उत्पादन में लगा देता है और विस्तारित पुनरुत्पादन करता है। किसी भी रूप में फिर से निवेशित होने वाली पूँजी को M से ही चिह्नित किया जा सकता है क्योंकि उसके बेशी मूल्य से लैस होने या लदे होने के निशानात मिट चुके होते हैं और उसके द्वारा ख़रीदे जाने वाले विशिष्ट मालों (उत्पादन के साधनों व श्रमशक्ति) को भी C' और L' और mp' से चिह्नित नहीं किया जा सकता है, क्योंकि उत्पादन के साधनों के मूल्य और मज़दूरी की औसत दर में अन्तर आने के कारण यह हो सकता है कि बढ़े पूँजी निवेश के बावजूद पहले से बड़ी मात्रा में उत्पादन के साधन व श्रमशक्ति न ख़रीदी जा सके, या, बढ़ते तकनीकी संघटन के कारण उत्पादन के साधनों व श्रमशक्ति के अनुपात में भी अन्तर आ सकता है। यानी, उनके भौतिक अनुपात और मूल्य-सम्बन्धों में अन्तर आ सकता है।

बहरहाल, इस सूत्र पर निगाह डालते ही जो बात सबसे पहले हमारे सामने आती है वह यह है कि यह नियमित अन्तराल पर उत्पादन की प्रक्रिया के दुहराव को प्रदर्शित करता है। *यानी, यह पूँजीवादी पुनरुत्पादन की प्रक्रिया को प्रदर्शित करता है।* इस पुनरुत्पादन की प्रक्रिया का लक्ष्य होता है बेशी मूल्य का उत्पादन। यानी, यहाँ हम नियमित अन्तराल पर महज़ पुनरुत्पादन की प्रक्रिया को ही घटित होता नहीं देखते हैं, बल्कि हम बेशी मूल्य के पुनरुत्पादन की प्रक्रिया को नियमित अन्तराल पर घटित होता देखते हैं, जिसमें परिपथ बार-बार उत्पादक-पूँजी से शुरू होता है और उसी पर समाप्त होता है और हर समाप्ति उत्पादन के प्रक्रिया के फिर से शुरू होने का बिन्दु मात्र होती है।

इस बात को समझते ही उत्पादक-पूँजी के परिपथ की दो चारित्रिक अभिलाक्षणिकताएँ भी स्पष्ट तौर पर सामने आ जाती हैं। पहली यह कि मुद्रा-पूँजी के परिपथ के विपरीत, जिसमें उत्पादन की प्रक्रिया पूँजी के संचरण की प्रक्रियाओं (M – C और C' – M') के बीच एक व्यवधान के रूप में प्रकट होती है, उत्पादक-पंजी के परिपथ में संचरण की प्रक्रिया $(C' - M' - C<^{L}_{mp})$ उत्पादन की प्रक्रियाओं के बीच एक व्यवधान के रूप में प्रकट होती है। दूसरे शब्दों में, यहाँ उत्पादन की प्रक्रियाओं के बीच संचरण की कार्रवाई मध्यस्थता करती है, उत्पादन की प्रक्रिया के पुनर्नवीकरण या दुहराव की ज़मीन तैयार करती हैं। जैसा कि मार्क्स लिखते हैं:

> "समुचित रूप में संचरण यहाँ महज़ पुनरुत्पादन के एक मध्यस्थ के रूप में प्रकट होता, जो कि नियमित तौर पर दुहराया जाता है और इस दुहराव के ज़रिये निरन्तरता ग्रहण कर लेता है।" (*वही*, पृ. 144, *अनुवाद हमारा*)

दूसरी अभिलाक्षणिकता यह है संचरण की प्रक्रिया यहाँ उस रूप से विपरीत रूप में प्रकट होती है, जिस रूप में वह मुद्रा-पूँजी के परिपथ में प्रकट होती है। मुद्रा-पूँजी के परिपथ में हम संचरण की प्रक्रिया को M – C – M' (यानी, M – C'.C' – M') के रूप में देखते हैं, जबकि उत्पादक-पूँजी के परिपथ में यह हमें साधारण माल उत्पादन वाले **आम** रूप में दिखायी देती है, यानी, C – M – C (उत्पादक-पूँजी के परिपथ में यह इस रूप में प्रकट होती है $C' - M' - C<^{L}_{mp}$)

इसकी वजह यह है कि यहाँ संचरण की प्रक्रिया केवल पुनरुत्पादन को सतत् जारी रखने की प्रक्रिया में एक मध्यस्थ के रूप में सामने आती है। उत्पादन की प्रक्रिया इसके पहले घटित होती है और इसके बाद घटित होती है।

इस दो बातों पर ग़ौर करने के बाद हम उत्पादक-पूँजी के परिपथ पर साधारण पुनरुत्पादन और विस्तारित पुनरुत्पादन दोनों की स्थितियों में विचार कर सकते हैं।

साधारण पुनरुत्पादन

साधारण पुनरुत्पादन की स्थिति में उत्पादक-पूँजी के परिपथ पर विचार करते समय सबसे पहले हमें इस परिपथ में मौजूद संचरण की कार्रवाइयों पर विचार करना होगा क्योंकि उत्पादन के जगत में क्या होता है इस पर पहले ही विचार किया जा चुका है। उत्पादक-पूँजी के परिपथ में संचरण की प्रक्रिया इस रूप में प्रकट होती है :

C' – M' – C. संचरण की पहली कार्वाई है C' – M'. मुद्रा-पूँजी के चरण में इस कार्वाई के साथ परिपथ पूरा हो जाता था। लेकिन उत्पादक-पूँजी के परिपथ में यह दूसरा क़दम है। पहला कदम है P … C'. संचरण की कार्वाई इस परिपथ में शुरू ही इसके बाद होती है। संचरण की कार्वाई के पहले चरण में हम C' के M' में औपचारिक रूपान्तरण को देखते हैं। यह माल-पूँजी का मुद्रा-पूँजी में रूपान्तरण है और यह औपचारिक रूपान्तरण है क्योंकि यहाँ कोई मूल्य-संवर्धन नहीं हो रहा। C' निश्चित रूप में मालों की एक मात्रा का प्रतिनिधित्व करता है, लेकिन यह मालों की कोई भी साधारण मात्रा नहीं है, बल्कि यह माल-पूँजी है। क्यों? क्योंकि यह पूँजीवादी उत्पादन की प्रक्रिया से गुज़रकर मूल्य-संवर्धित हो चुका है। यानी इसमें महज़ मूल रूप से निवेशित पूँजी यानी M या उत्पादक रूप में P के बराबर मूल्य ही निहित नहीं है, बल्कि इसमें बेशी मूल्य भी शामिल है। यानी, C' = C + c. यही कारण है कि जब यह माल पूरा का पूरा अपने मूल्य पर बिकता है (जैसा कि हमने फिलहाल माना है) तो यह M' में यानी M + m में तब्दील होता है। मुद्रा-पूँजी का परिपथ यहीं समाप्त हो जाता है इसलिए जब तक हम उसे सतत् दुहराव में न देखें यह स्पष्ट नहीं होता है कि अपने दुहराव में समूचा बेशी मूल्य पूँजीपति द्वारा अपनी आमदनी के रूप में संचित कर लिया जाता है, या उसे पूरा का पूरा पूँजी में तब्दील कर दिया जाता है, या उसे आंशिक रूप में पूँजी में तब्दील कर दिया जाता है। लेकिन उत्पादक-पूँजी के परिपथ में यह बात अभिव्यक्त रूप में प्रकट होती है। क्योंकि जब माल-पूँजी (C') मुद्रा-पूँजी (M') में तब्दील हो जाती है, तो उसे दूसरे संचरण के चरण से भी गुज़रना होता है, यानी $M' - C<^{L}_{mp}$

इसलिए उत्पादक-पूँजी के परिपथ में यह बात तत्काल ही स्पष्ट हो जाती है कि हम साधारण पुनरुत्पादन की बात कर रहे हैं या फिर विस्तारित पुनरुत्पादन व पूँजी संचय की। यदि M और m का रास्ता अलग-अलग हो जाता है और m पूर्ण रूप से पूँजीपति के व्यक्तिगत उपभोग में ख़र्च होकर इस पूँजी के परिपथ से निकलकर मालों के आम संचरण में प्रवेश कर जाता है, तो यह साधारण पुनरुत्पादन है। अगर m पूर्ण रूप से या आंशिक रूप से पूँजीपति द्वारा संचित कर पूँजी में तब्दील किया जाता है, तो M और m का आगे का रास्ता पूरी तरह से अलग नहीं होता है। पूँजीपति के निर्णय के आधार पर ही परिपथ का चरित्र बदल जाता है।

साधारण पुनरुत्पादन की स्थिति में जब हम उत्पादक-पूँजी के परिपथ को विस्तारित रूप में देखते हैं, तो वह इस प्रकार दिखायी देता है :

$$C'\begin{pmatrix} C \\ + \\ c \end{pmatrix}\begin{matrix} \text{——} \\ -M' \\ \text{——} \end{matrix}\begin{pmatrix} M \\ + \\ m \end{pmatrix}\begin{matrix} -C<^{L}_{mp} \\ \\ -c \end{matrix}$$

अगर हम मार्क्स द्वारा इस्तेमाल किये जा रहे उदाहरण का ही इस्तेमाल करें तो उसमें मूल रूप से निवेशित पूँजी यानी M था 422 पाउण्ड। इसमें से 372 पाउण्ड स्थिर पूँजी थी जो उत्पादन के साधनों पर लगायी गयी थी, 50 पाउण्ड परिवर्तनशील पूँजी थी जो श्रमशक्ति को ख़रीदने यानी मज़दूरों को मज़दूरी देने में लगायी गयी थी। उत्पादन के चरण में श्रमशक्ति का उत्पादक उपभोग होता है और वह इसी प्रक्रिया में उत्पादन के साधनों का भी उत्पादक उपभोग करती है और ख़र्च हुए उत्पादन के साधनों के कुल मूल्य का संरक्षण कर उसे उत्पादित माल में स्थानान्तरित करती है, अपने मूल्य के बराबर मूल्य पैदा करती है और साथ ही उसके ऊपर बेशी मूल्य पैदा करती है। इस प्रक्रिया में उसने हमारे उदाहरण में 78 पाउण्ड बेशी मूल्य पैदा किया। उत्पादित माल मूल पूँजी-मूल्य और बेशी मूल्य दोनों से लैस है। इसलिए C' का मूल्य M और $C(<^{L}_{mp})$ के मूल्य (जो कि P के ही बराबर है) और बेशी मूल्य के योग, यानी C + c के बराबर है। यहाँ पूँजी-मूल्य के बराबर मूल्य के उत्पादित मालों के समुच्चय यानी C का मूल्य है 422 पाउण्ड (372 + 50) और c यानी 78 पाउण्ड के बराबर बेशी मूल्य की नुमाइन्दगी करने वाले मालों का समुच्चय है। अगर समूचा माल बिक जाये तो यह M' यानी M + m के रूप में, यानी बेशी मूल्य से लदी पूँजी के रूप में, मुद्रा-रूप में पूँजीपति के हाथों में आती है।

अब उपरोक्त सूत्र के अनुसार पूँजीपति बेशी मूल्य यानी m को पूर्णत: अपने उपभोग पर ख़र्च कर देता है। यानी, m का रास्ता पूँजी के परिपथ में शुरू होता है, लेकिन फिर उससे अलग हो जाता है। पूँजीपति जब समूची माल पूँजी यानी C' को बेचता है, यानी मुद्रा के रूप में उसे वास्तवीकृत करता है, तो C और c दोनों ही उसके पास मुद्रा-रूप में आ जाते हैं। यहाँ बेशी उत्पाद यानी c संचरण के पहले चरण यानी c – m से गुज़रता है। इस m से पूँजीपति अपनी आवश्यकता और ऐशो-आराम के माल

(पेज 16 पर जारी)

मार्क्सवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र के सिद्धान्त

(पेज 15 से आगे)

ख़रीदता है और इस प्रकार दूसरा रूपान्तरण होता है, यानी m – c. यानी बेशी मूल्य का संचरण को देखें तो हम उसे इस रूप में पेश कर सकते हैं : c – m – c. यानी, सामान्य रूप में माल संचरण, जो पूँजी के परिपथ में जन्म लेता है, लेकिन बाद में उसका पथ पूँजी के परिपथ से बाहर चला जाता है।

ज़ाहिर है कि बेशी मूल्य पैदा पूँजी के परिपथ में ही होता है और वहीं हो सकता है, लेकिन साधारण पुनरुत्पादन की स्थिति में उसका रास्ता पूँजी के परिपथ से बाहर चला जाता है और मालों के आम संचरण का अंग बन जाता है। बेशी उत्पाद के वास्तवीकरण के ज़रिये पूँजीपति के हाथों में आयी मुद्रा अब महज़ मुद्रा यानी महज़ सिक्कों व नोटों की भूमिका ही अदा कर रही है, मुद्रा-पूँजी की नहीं।

यहाँ पर एक और ग़ौरतलब बात यह है कि पूँजीवादी उत्पादन से उत्पादित माल ऐसा हो सकता है जो टुकड़ों-टुकड़ों में बिकता हो या फिर ऐसा हो सकता है जो एक साथ साबुत ही बिक सकता हो। मसलन, हमारे उदाहरण में 10,000 एल.बी. सूत के धागे एक बार में भी बिक सकते हैं या वे एक लम्बी प्रक्रिया में अंश-अंश में भी बिक सकते हैं। लेकिन यह ऐसा माल भी हो सकता है जो एक साथ पूरा का पूरा साबुत ही बिक सकता हो, मसलन कोई मशीन, जिसकी क़ीमत 500 पाउण्ड है। पहली सूरत में पूँजीपति की पूँजी और बेशी मूल्य अलग-अलग समय में वास्तवीकृत (यानी मुद्रा-रूप में रूपान्तरित) हो सकते हैं, जबकि दूसरी सूरत में यह एक साथ समूची मशीन के बिकने के साथ ही वास्तवीकृत होते हैं। दूसरी सूरत में, पूँजीपति माल के बिकने के बाद यानी M’ के हाथों में आने के बाद ही उसमें से बेशी मूल्य यानी m को अलग कर सकता है और अपने उपभोग पर ख़र्च कर सकता है। मशीन में C और c का अलग अस्तित्व केवल एक धारणात्मक, कल्पित (काल्पनिक नहीं) या आदर्श रूप में ही होता है, भौतिक रूप में नहीं। मशीन के अपने सम्पूर्ण रूप में बिके बिना पूँजी-मूल्य और बेशी-मूल्य अलग-अलग रूप में पूँजीपति के हाथों में नहीं आ सकते। बहरहाल, इससे बेशी मूल्य के संचरण के अलग होने वाले पथ पर कोई असर नहीं पड़ता है।

दूसरी ग़ौरतलब बात यह है कि पूँजी का परिपथ बेशी मूल्य के संचरण के पथ से यानी c – m – c से अलग C – M – C के रूप में जारी रहता है। इन्हें संचरण के दो अलग पथों के रूपों में देखा जा सकता है, जो रूप के मामले में सामान्य रूप में माल संचरण के तौर पर ही प्रकट होते हैं। C – M – C पूँजी के परिपथ का ही अंग बना रहता है, जबकि c – m – c मालों के आम संचरण का अंग बन जाता है।

तीसरी बात यह कि अगर पूँजीपति समूचे बेशी मूल्य को अपने व्यक्तिगत उपभोग पर ख़र्च नहीं करता और उसके एक हिस्से का संचय कर उसे पूँजी में तब्दील करता है, तो पूँजी-मूल्य अपने परिपथ के अगले चरणों में संवर्धित होकर पहुँचता है और उस सूरत में उसके आवयविक संघटन में, यानी स्थिर पूँजी और परिवर्तनशील पूँजी के रूप में उसके विभाजन के अनुपात में परिवर्तन भी हो सकता है।

चूँकि c – m – c के साथ C – M – C भी रूपगत धरातल पर सामान्य माल संचरण के रूप में ही प्रकट होता है जिसमें माल केवल औपचारिक रूपान्तरण से गुज़रते हैं और उनके मूल्यों में कोई परिवर्तन नहीं होता, इसलिए भोंड़े राजनीतिक अर्थशास्त्रियों को यह भ्रम होता है कि पूँजीवादी उत्पादन भी महज़ विनिमय हेतु उपयोग मूल्यों का उत्पादन मात्र है। लेकिन C और c दोनों ही C’ का ही अंग हैं, जो कि महज़ साधारण माल नहीं बल्कि *माल-पूँजी* है क्योंकि वह मूल्य-संवर्धन से गुज़र चुकी है और बेशी मूल्य से लैस है। साधारण पुनरुत्पादन की सूरत में भी बेशी मूल्य के बढ़ने की सम्भावना हमेशा रहती है और वह अक्सर बढ़ता ही है। बस फ़र्क इतना ही होता है कि बेशी मूल्य के संचरण का पथ पूँजी के परिपथ से बाहर चला जाता है। लेकिन बेशी मूल्य पैदा पूँजी के परिपथ में ही होता है और अगर पूँजी के परिपथ के आगे बढ़ने में कहीं ठहराव या व्यवधान आता है, तो न सिर्फ़ इस बेशी मूल्य का उत्पादन या मुद्रा-रूप में उसका वास्तवीकरण खटाई में पड़ सकता है, बल्कि जिन मालों के साथ उनका विनिमय होना होता है, उनका विपणन भी अधर में लटक जाता है। यानी, इससे न सिर्फ़ c यानी बेशी मूल्य का विनियोजन अनिश्चित हो जाता है, बल्कि उन मालों का बिकना भी अनिश्चित हो जाता है जिन्हें पूँजीपति विनियोजित बेशी मूल्य के ज़रिये ख़रीदता है। मार्क्स याद दिलाते हैं कि अगर माल-पूँजी पूर्ण रूप से या आंशिक रूप से बिक नहीं पाती, या अपने मूल्य से बेहद कम क़ीमत में बिकती है, तो ऐसा ही होता है।

चूँकि पूँजीपति का अस्तित्व इस बेशी मूल्य के आंशिक या पूर्ण रूप से अपने व्यक्तिगत उपभोग पर निर्भर करता है, चूँकि बेशी मूल्य पूँजीवादी उत्पादन की प्रक्रिया में ही पैदा होता है और चूँकि पूँजी और पूँजीवादी उत्पादन का अस्तित्व स्वयं पूँजीपति के अस्तित्व पर आधारित होता है, इसलिए साधारण पुनरुत्पादन का पूँजीवादी चरित्र आरम्भ से ही स्पष्ट होता है। मार्क्स लिखते हैं :

> “लेकिन इस सम्बन्ध में इस छोटी-सी बात को भूला नहीं जाना चाहिए कि c माल-रूप में एक ऐसा मूल्य है जिसका कोई भी ख़र्च पूँजीपति पर नहीं आया है; यह बेशी श्रम का मूर्त रूप है, जो मूलत: माल-पूँजी C’ के एक संघटक तत्व के रूप में मंच पर प्रकट हुआ था। इस प्रकार यह c पहले से ही अपने अस्तित्व से ही गतिमान पूँजी-मूल्य के परिपथ से जुड़ा हुआ है, और अगर यह परिपथ किसी भी रूप में रुकता है या उसमें व्यवधान पड़ता है, तो न केवल c का उपभोग बाधित हो जाता है, या पूर्णत: रुक जाता है, बल्कि साथ ही उन मालों के समुच्चय के लिए बाज़ार भी बाधित या समाप्त हो जाता है जो c का स्थानापन्न होते हैं। ऐसा ही तब भी होता है अगर C’ – M’ का रूपान्तरण ही खटाई में पड़ जाये या फिर C’ का केवल एक हिस्सा ही बिक पाये।” (*वही*, पृ. 149, *अनुवाद हमारा*)

मार्क्स स्पष्ट करते हैं कि मालों के सामान्य संचरण में C’ महज़ एक माल के रूप में गतिमान होता है। लेकिन पूँजी के संचरण में यह महज़ माल नहीं बल्कि माल-पूँजी की भूमिका में होता है। जब C’ – M’ का चरण पूरा होता है, यानी जब यह माल बिक जाता है, तो मालों के रूप में यह C’ उसका उत्पादन करवाने वाले उत्पादक पूँजीपति की पूँजी के संचरण से बाहर चला जाता है, लेकिन मालों के आम संचरण में वह बना रहता है, जहाँ से उपभोक्ता द्वारा ख़रीदे जाने के साथ वह उपभोग की दुनिया में प्रवेश कर जाता है। मार्क्स बताते हैं कि यह सूत के धागे किसी व्यक्तिगत उपभोक्ता के निजी उपभोग में जाते हैं या किसी अन्य पूँजीपति के उत्पादक उपभोग में, इससे कोई फ़र्क नहीं पड़ता क्योंकि मालों का सामान्य संचरण वास्तव में तमाम पूँजीपतियों की पूँजी के परिपथों और साथ ही उन मूल्यों के भी संचरण का अन्तर्गुन्थन होता है, जो बाज़ार में पूँजी के रूप में नहीं प्रकट होते हैं।

जब हम उत्पादक-पूँजी के परिपथ में संचरण की प्रक्रिया के दूसरे चरण पर विचार करते हैं, तो हम देखते हैं कि C’ – M’ के पूरा होने के साथ बेशी मूल्य यानी m पूँजी के परिपथ से बाहर चला जाता है और मालों के आम संचरण का अंग बन जाता है, जबकि M फिर से पूँजी के परिपथ का पुनर्नवीकरण करता है। इस M का मूल्य उत्पादक-पूँजी यानी P के ही बराबर होता है। इसके ज़रिये पूँजीपति फिर से श्रमशक्ति (L) और उत्पादन के साधन (mp) ख़रीदता है और फिर उत्पादन की प्रक्रिया की शुरुआत के साथ उत्पादक-पूँजी का परिपथ पूर्ण हो जाता है। लेकिन यहीं पर हम देख सकते हैं कि किस प्रकार उत्पादक-पूँजी का परिपथ मुद्रा-पूँजी के परिपथ की एक आलोचना पेश करता है।

पहली बात यह है कि मुद्रा-पूँजी के परिपथ में $\mathbf{M - C<^{L}_{mp}}$ पहला चरण होता है, जहाँ पूँजी शुरू से ही अपने मुद्रा-रूप में प्रकट होती है। उसका मूल यहाँ स्पष्ट रूप में अभिव्यक्त नहीं होता है। लेकिन उत्पादक-पूँजी के परिपथ में जब पहली बार पूँजी मुद्रा-रूप में प्रकट होती है, तो वह पहले से ही मज़दूरों के श्रम द्वारा उत्पादित माल का रूपान्तरित रूप होती है। वह पहले से ही श्रम व उत्पादन की प्रक्रिया से गुज़र चुकी होती है, मूल्य-संवर्धित हो चुकी होती है और माल-पूँजी से मुद्रा-पूँजी में रूपान्तरित हो चुकी होती है। यहाँ पूँजीपति के हाथ में मौजूद यह मुद्रा-पूँजी शुरू से ही *अतीत में किये गये श्रम का परिणाम* होती है। M – C का चरण यहाँ तभी घटित हो सकता है, जब उससे पहले C’ – M’ का चरण घटित हो चुका हो। C’ – M’ का चरण स्वयं तभी घटित हो सकता है जब उत्पादन की प्रक्रिया में बेशी मूल्य से लैस मालों का उत्पादन हो चुका हो और पूँजी का मूल्य-संवर्धन हो चुका हो। यानी पूँजीपति की पूँजी का मूल यहाँ उद्घाटित हो जाता है।

दसरी बात यह है कि जब पूँजीपति $\mathbf{M - C<^{L}_{mp}}$ का चरण पूरा करता है, यानी जब वह उत्पादन का पुनर्नवीकरण करने के लिए फिर से श्रमशक्ति ख़रीदता है, तो वह मज़दूरों को मज़दूरों द्वारा पैदा किये गये मालों के मूल्य से ही मज़दूरी दे रहा होता है। नतीजतन, मज़दूर के श्रम के उत्पाद के विपणन से वास्तवीकृत पूँजी द्वारा ही मज़दूरों को मज़दूरी दी जाती है। *यानी, पूँजीपति मज़दूर का ‘माई-बाप’, ‘बाऊजी’, ‘अन्नदाता’, आदि नहीं होता है जो उसे अपनी जेब से मज़दूरी देता है। उल्टे वह तो मज़दूरों के ही श्रम के शोषण से प्राप्त पूँजी से ही मज़दूरों को मज़दूरी देता है, वह पूँजी जो और कुछ नहीं बल्कि मज़दूरों द्वारा अतीत में किया गया, वस्तुकृत हो चुका और वास्तवीकृत हो चुका श्रम ही है।* मार्क्स लिखते हैं:

> “यहाँ मुद्रा-पूँजी शुरू से न तो पूँजी-मूल्य के मौलिक रूप में दिखती है और न ही अन्तिम रूप में, क्योंकि बार-बार मुद्रा-रूप का परित्याग करके ही C – M के पूरक की भूमिका निभाने वाले चरण यानी M – C को पूरा किया जा सकता है। इस प्रकार M – C का वह हिस्सा जो साथ ही M – L भी होता है, वह श्रमशक्ति प्राप्त करने के लिए मुद्रा का निवेश मात्र नहीं दिखता है, बल्कि यह प्रकट हो जाता है कि 50 पाउण्ड मूल्य वाले उन्हीं 1000 एलबी सूत के धागों को मुद्रा-रूप में श्रमशक्ति के लिए लगाया जाता है, और यह भी श्रमशक्ति द्वारा माल-रूप में पैदा किये जा चुके मूल्य का ही एक हिस्सा है। *मज़दूर को दी जाने वाली मुद्रा यहाँ माल-रूप में उसी के द्वारा उत्पादित मूल्य का एक रूपान्तरित समतुल्य रूप मात्र है...*
>
> “M’ यहाँ C’ के ही रूपान्तरित रूप के तौर पर प्रकट होता है, जो अपने आप में P के अतीत में सम्पन्न प्रकार्य का ही, यानी उत्पादन प्रक्रिया का ही उत्पाद मात्र है; इस प्रकार M’ की समूची राशि यहाँ अतीत में किये गये श्रम की मौद्रिक अभिव्यक्ति के रूप में प्रकट होती है।” (*वही*, पृ. 151, *अनुवाद और ज़ोर हमारा*)

यहाँ यह भी ग़ौरतलब है कि जहाँ एक ओर पूँजीपति द्वारा फिर से पूँजी का निवेश यानी M – C वस्तुत: C – M का ही पूरक है और इस प्रकार M पूँजीपति द्वारा मज़दूरों के ही अतीत के श्रम की ही नुमाइन्दगी करता है, वहीं दूसरी ओर M – C में M रूपान्तरित तौर पर ऐसे मालों की नुमाइन्दगी भी कर सकता है, जिनका अभी उत्पादन नहीं हुआ है। *इस प्रकार, M श्रम के भावी उत्पादों पर पूँजीपति का दावा भी हो सकता है।* इसी प्रकार, पूँजीपति द्वारा व्यक्तिगत उपभोग के लिए हस्तगत कर लिया गया बेशी मूल्य यानी m भी ऐसे मालों पर पूँजीपति का दावा हो सकता है, जो अभी पैदा ही नहीं हुए हैं। और इसके अलावा, मज़दूर के नज़रिये से देखें, तो L – M – C की प्रक्रिया में उसे मिली मज़दूरी भी ऐसे मालों पर मज़दूरों का दावा मात्र हो सकती है, जिन्हें अभी स्वयं मज़दूरों द्वारा पैदा किया जाना है। यानी, एक ओर पूँजीपति के हाथों में मौजूद M’ (M + m) अतीत के श्रम का ही फल होता है, वहीं दूसरी ओर उत्पादक निवेश हेतु पूँजीपति के हाथों में मौजूद M और व्यक्तिगत उपभोग के लिए उसके हाथों में मौजूद m, और साथ ही मज़दूर को L – M के द्वारा प्राप्त हुई मज़दूरी भी श्रम के भावी उत्पादों (चाहे वे उत्पादक उपभोग के साधन हों या व्यक्तिगत उपभोग के साधन) की नुमाइन्दगी भी कर सकते हैं क्योंकि ये सभी माल पहले से बाज़ार में मौजूद हों, ऐसा नहीं होता है। *किसी भी स्थिति में पूँजीपति के हाथों में मौजूद मुद्रा अतीत के श्रम के उत्पादों का ही रूपान्तरित रूप है और उसका विनिमय अतीत के श्रम से पैदा मालों के साथ, ठीक उसी समय उत्पादित हो रहे मालों के साथ या भविष्य में उत्पादित होने वाले मालों के साथ हो सकता है। मज़दूर की मज़दूरी भी स्वयं उसके ही श्रम के उत्पादों का रूपान्तरित रूप ही है और उसका विनिमय भी स्वयं मज़दूर वर्ग द्वारा अतीत में पैदा हो चुके, वर्तमान में पैदा हो रहे या भविष्य में पैदा हो रहे मालों के साथ ही होता है।*

इस प्रकार, श्रम का उत्पाद माल मुद्रा का रूप लेता है लेकिन सिर्फ़ इसलिए कि इस मुद्रा को फिर से श्रम के उत्पाद माल का ही रूप ग्रहण करना होता है। इस पूरी प्रक्रिया में मुद्रा-पूँजी एक क्षणभंगुर रूप के तौर पर प्रकट और बार-बार माल-पूँजी में रूपान्तरित होती रहती है क्योंकि इसके बिना मालों का पूँजीवादी उत्पादन यानी बेशी मूल्य का उत्पादन नहीं हो सकता है। इस प्रक्रिया में वास्तव में हम समाज में अलग-अलग पूँजीवादी उत्पादकों के मातहत मज़दूरों (और गौण रूप में मालों के आम संचरण में शामिल साधारण माल उत्पादकों) के श्रम द्वारा उत्पादित हो रहे श्रम के उत्पादों का ही विनिमय होता है और मुद्रा इस प्रक्रिया में एक क्षणभंगुर तत्व के रूप प्रकट और ओझल होती रहती है। मार्क्स लिखते हैं :

> “दूसरी बात यह कि संचरण $\mathbf{C - M - C<^{L}_{mp}}$ में वही मुद्रा अपनी जगह को दो बार बदलती है; पहले पूँजीपति इसे एक विक्रेता के रूप में प्राप्त करता है और फिर इसे एक क्रेता के

(पेज 17 पर जारी)

मार्क्सवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र के सिद्धान्त

(पेज 16 से आगे)

रूप में देता है। माल के मुद्रा-रूप में रूपान्तरण की भूमिका केवल यह होती है कि इसे मुद्रा-रूप से फिर से माल-रूप में तब्दील हो जाना होता है, और इसलिए पूँजी का मुद्रा-रूप, यानी मुद्रा-पूँजी के रूप में इसका अस्तित्व, *इसकी समूची गति में एक अस्थायी क्षण मात्र होता है।*" (*वही,* पृ. 152, *अनुवाद और ज़ोर हमारा*)

यानी, मुद्रा-पूँजी की भूमिका केवल उत्पादित माल को उत्पादन के साधनों व श्रमशक्ति में तब्दील करने वाले एक मध्यस्थ की होती है। दूसरे शब्दों में, यह (साधारण पुनरुत्पादन की स्थिति में बेशी मूल्य को अलग करने के बाद) केवल माल-पूँजी को वापस उत्पादक-पूँजी के तत्वों में तब्दील करने वाले एक बिचौलिये की भूमिका में होती है। हम देख सकते हैं किस प्रकार उत्पादक-पूँजी का परिपथ मुद्रा-पूँजी के परिपथ की आलोचना पेश करता है। *यहाँ मुद्रा-पूँजी स्वयं श्रम द्वारा उत्पादित माल का रूपान्तरित रूप होता है और वह और कुछ नहीं करती बल्कि महज़ माल-पूँजी को वापस उत्पादन के तत्वों, यानी उत्पादक-पूँजी में तब्दील करने में एक मध्यस्थ की भूमिका मात्र निभाती है।*

मार्क्स याद दिलाते हैं कि $\mathbf{C - M - C<^{L}_{mp}}$ की पूरी प्रक्रिया का अध्ययन करते हुए यहाँ हम यह मानकर चल रहे हैं कि उत्पादित माल पूर्ण रूप से बिकते हैं और अपने मूल्य पर बिकते हैं और साथ ही हम यह भी मान रहे हैं कि उसके बाद जब पूँजीपति बेशी मूल्य को व्यक्तिगत उपभोग के लिए हस्तगत करने के बाद बाक़ी मुद्रा-पूँजी को श्रमशक्ति और उत्पादन के साधनों पर लगाता है, तो श्रमशक्ति और उत्पादन के साधन के मूल्यों में भी कोई अन्तर नहीं आया है। अगर इनमें से एक भी शर्त पूरी नहीं होती है, तो साधारण पुनरुत्पादन की प्रक्रिया सुगम तरीक़े से नहीं चल सकती है। निश्चित तौर पर, वास्तव में आम तौर पर ऐसा ही होता है कि ये शर्तें पूरी नहीं होतीं, क्योंकि पूँजीवादी उत्पादन व्यवस्था की तमाम विशिष्टताओं में से एक यह भी है कि इसमें सभी मालों के बीच के मूल्य-सम्बन्ध लगातार बदलते रहते हैं क्योंकि उत्पादन की अलग-अलग शाखाओं में श्रम की उत्पादकता में अलग-अलग मात्रा, अनुपात और दिशा में परिवर्तन होते रहते हैं और नतीजतन अलग-अलग मालों के मूल्य अलग-अलग दर और दिशा में बदलते रहते हैं, साथ ही लाभप्रदता की गति के अनुसार कुछ माल अपने मूल्य से ऊपर तो कुछ उनसे नीचे बिकते हैं। लेकिन फिलहाल हमें पुनरुत्पादन की स्थितियों की उनके शुद्ध रूप में जाँच करनी है ताकि उसके बुनियादी नियमों को समझ पाएँ। ये बुनियादी नियम अलग-अलग कारकों के प्रभाव में किस प्रकार परिवर्तित होते हैं, इसे भी बाद में तभी समझा जा सकता है। इसलिए मार्क्स फिलहाल इन कारकों को विश्लेषण में प्रविष्ट नहीं कराते हैं।

मुद्रा-पूँजी की मात्र एक मध्यस्थ की भूमिका पर टिप्पणी करते हुए मार्क्स कहते हैं कि उत्पादन और मूल्य-संवर्धन की प्रक्रिया अपने आप में मुद्रा-पूँजी का प्रकार्य नहीं है। यह मुद्रा-पूँजी के श्रमशक्ति और उत्पादन के साधनों में तब्दील होने पर ही सम्भव होता है। जब तक मुद्रा-पूँजी मुद्रा-पूँजी के रूप में ही मौजूद होती है, वह पूँजी के रूप में *गतिमान* नहीं होती। वह पूँजी के रूप में, यानी ऐसे मूल्य के रूप में जो अपने आपको संवर्धित करता है, केवल तभी गतिमान हो सकती है, जब उसे श्रमशक्ति और उत्पादन के साधनों में तब्दील किया जाय। मुद्रा-पूँजी यानी M वास्तव में केवल *पूँजी के संचरण की कार्रवाई* को ही पूरा कर सकती है। उसी प्रकार, बेशी मूल्य से लैस उत्पादित माल-पूँजी केवल वापस मुद्रा-रूप ग्रहण कर सकती है। इसके अलावा, वह मुद्रा-रूप भी महज़ इसलिए ही ग्रहण करती है क्योंकि उसे वापस उत्पादक-पूँजी के तत्वों में तब्दील किया जाना होता है। मूल्य-संवर्धन का काम केवल उत्पादन के क्षेत्र में ही हो सकता है और पूँजी उत्पादन के क्षेत्र *से ही* पूँजी बनती है। वह संचरण की कार्रवाई *में* पूँजी बनती है क्योंकि यहीं उसे उत्पादक-पूँजी के तत्वों में तब्दील किया जाता है, यानी श्रमशक्ति और उत्पादन के साधनों में। मार्क्स लिखते हैं :

> "यह तक यह मुद्रा के रूप में ही बनी रहती है, तब तक यह पूँजी के रूप में काम नहीं करती, और इसलिए, उसका मूल्य-संवर्धन नहीं होता; पूँजी गतिहीन रहती है। M यहाँ केवल संचरण के माध्यम के रूप में, हालाँकि पूँजी के संचरण के माध्यम के रूप में ही काम करती है। परिपथ के पहले रूप (*यानी मुद्रा-पूँजी के परिपथ – अनु.*) में मुद्रा-रूप में पूँजी-मूल्य का जो *स्वतन्त्रता का प्रतीतिगत रूप होता है, वह दूसरे रूप में ग़ायब हो जाता है, जो इस प्रकार रूप-I की एक आलोचना बन जाता है,* और इसे महज़ एक विशिष्ट रूप पर अपचयित कर देता है।" (*वही,* पृ. 153-54, *अनुवाद और ज़ोर हमारा*)

मार्क्स बताते हैं कि अगर माल को बेचने के बाद वास्तवीकृत मुद्रा-पूँजी को किसी भी वजह से श्रमशक्ति या उत्पादन के साधनों में (अनुपलब्धता आदि के कारण) नहीं बदला जा सकता तो भी पूँजीवादी पुनरुत्पादन पर वही असर पड़ता है, जो कि तब पड़ता जब माल ही नहीं बिक पाते हैं। एक रूप में पूँजी अपने मुद्रा-रूप में फँसकर ठहरावग्रस्त हो जाती और दूसरे में वह अपने माल-रूप में फँसकर ठहरावग्रस्त हो जाती। इन दोनों स्थितियों में बस यह अन्तर है कि मुद्रा-रूप में पूँजी-मूल्य अधिक टिकाऊ रूप में देर तक मौजूद रह सकता है और मुद्रा-रूप में पूँजी को एक व्यवसाय से हटाकर दूसरे व्यवसाय में लगाना या सूद पर चढ़ा देना, आदि आसान होता है, जबकि अगर पूँजी-मूल्य माल-रूप में फँस गया तो अपेक्षाकृत जल्दी ही उसका मूल्य-ह्रास होता है और वह एक माल, एक उपयोग-मूल्य, ही नहीं रह जाता है। यहाँ यह बात ग़ौरतलब है कि चूँकि उत्पादित माल को बेचने के बाद वास्तवीकृत मुद्रा-पूँजी से उत्पादन के साधनों और श्रमशक्ति को ख़रीदने की स्थितियाँ किसी भी विशिष्ट पूँजी के परिपथ से बाहर मौजूद होती हैं, इसलिए किसी भी पूँजी के परिपथ की गतिमानता और इसलिए पूँजीवादी पुनरुत्पादन केवल उस पूँजी के परिपथ के आन्तरिक कारकों से निर्धारित नहीं होता है। ये स्थितियाँ पूर्ण होंगी या नहीं, इस पर किसी वैयक्तिक पूँजीपति व उसके पूँजी के परिपथ का कोई नियन्त्रण नहीं होता है, बल्कि यह आम तौर पर समूची पूँजीवादी व्यवस्था की सामान्य आर्थिक स्थिति पर, विशेष तौर पर, पूँजी संचय की और लाभप्रदता की गति पर निर्भर करता है।

परिपथ के पहले रूप यानी मुद्रा-पूँजी के परिपथ में $\mathbf{M - C<^{L}_{mp}}$ पहली दफ़ा उत्पादन के चरण की ज़मीन तैयार करता है। परिपथ के दूसरे रूप में यह रूपान्तरण महज़ उत्पादन के चरण की ज़मीन नहीं तैयार करता है, बल्कि यह उत्पादन के चरण में पूँजी के *वापस लौटने* की ज़मीन को तैयार करता है, यानी पुनरुत्पादन और साथ ही बेशी मूल्य के पुनरुत्पादन की ज़मीन तैयार करता है, क्योंकि M यहाँ पहले से ही C' यानी उत्पादित माल के बिकने के परिणाम के तौर पर प्रकट होता है। यहाँ यह याद रखना ज़रूरी है कि मूल्य-संवर्धन की ज़मीन बुनियादी तौर पर M – L से पैदा होती है। M – mp इसमें केवल बेशी मूल्य के उत्पादन की वस्तुगत स्थितियों को तैयार करता है।

यदि हम उत्पादक-पूँजी के समूचे परिपथ को साधारण पुनरुत्पादन की स्थितियों में देखें तो वह इस प्रकार दिखता है:

$$P \ldots C'\begin{pmatrix} C \\ + \\ c \end{pmatrix}\begin{matrix} - \\ \\ - \end{matrix}\begin{pmatrix} M \\ + \\ m \end{pmatrix}\begin{matrix} - C<^{L}_{mp} \ldots P \\ \\ - c \end{matrix}$$

जब हम सम्पूर्णता में इस परिपथ को देखते हैं, तो कुछ अन्य महत्वपूर्ण बातें स्पष्ट हो जाती हैं। पहली बात यह कि यहाँ मुद्रा-पूँजी का, जो कि स्वयं (साधारण पुनरुत्पादन की स्थितियों में बेशी मूल्य को अलग करके) उत्पादित माल-पूँजी का ही वास्तवीकृत रूप है, कुछ विशिष्ट मालों में रूपान्तरण यानी उत्पादक-पूँजी के तत्वों में रूपान्तरण का लक्ष्य वापस मालों का उत्पादन है। दूसरी बात यह कि इस परिपथ को सम्पूर्णता में देखते ही स्पष्ट हो जाता है कि पूँजीवादी उत्पादन साधारण पुनरुत्पादन की सूरत में भी महज़ साधारण विनिमय हेतु किया जाने वाला माल उत्पादन नहीं है, बल्कि यह बेशी मूल्य के उत्पादन के लिए किया जाना वाला माल उत्पादन है। इसका मक़सद उत्पादक का जीविकोपार्जन नहीं है, बल्कि बेशी मूल्य का उत्पादन और उसका निजी विनियोजन है। यह बेशी मूल्य पूँजीपति अपने निजी उपभोग पर ख़र्च करता है या उसे पूर्ण या आंशिक रूप में पूँजी में तब्दील कर वापस उत्पादन में लगाता है, इससे इस उत्पादन के पूँजीवादी चरित्र पर कोई असर नहीं पड़ता है। यह महज़ मुद्रा की मध्यस्थता में होने वाला मालों का साधारण विनिमय नहीं है, बल्कि यहाँ हम बेशी मूल्य के उत्पादन के लक्ष्य के साथ मालों का मुद्रा की मध्यस्थता में विनिमय देखते हैं। या पूँजी के संचरण की प्रक्रिया को दिखलाता है, न कि सिर्फ़ सामान्य माल संचरण की प्रक्रिया को। पूँजीपति का निजी उपभोग और साथ ही मज़दूरों का निजी उपभोग पैदा ज़रूर पूँजी के परिपथ के भीतर होता है, लेकिन उनके निजी उपभोग का पथ पूँजी के परिपथ से बाहर चला जाता है, जैसा कि उपरोक्त परिपथ को देखते ही स्पष्ट हो जाता है। लेकिन बेशी मूल्य का उत्पादन ही बुनियादी लक्ष्य है, इस बात को नहीं समझ पाने के कारण ही क्लासिकीय बुर्जुआ अर्थशास्त्रियों में से कई यह नहीं समझ सके कि इस उत्पादन की प्रकृति ही ऐसी है कि इसमें अतिउत्पादन का संकट पैदा होता ही रहता है और नतीजतन वे अतिउत्पादन की सम्भावना से इंकार करते हैं।

तीसरी बात यह कि जब C' – M' का चरण पूरा हो जाता है तो उत्पादित माल आगे किस प्रक्रिया में और कितनी देर में व्यक्तिगत उपभोक्ता तक पहुँच कर उपभोग में जाता है, यह इस विशिष्ट पूँजी के परिपथ के लिए अप्रासंगिक हो जाता है। मसलन, अगर पूँजीपति ने अपना समूचा उत्पादित माल किसी व्यापारिक पूँजीपति को बेच दिया, तो वह तत्काल अपने पूँजी के परिपथ का पुनर्नवीकरण कर सकता है क्योंकि उसके हाथ में उसका पूँजी-मूल्य बेशी मूल्य समेत वास्तवीकृत होकर मुद्रा-रूप में आ गया। जब पूँजीपति अपने उत्पादन के पैमाने को विस्तारित करता है (जो कि उसे पूँजीपतियों के बीच मौजूद प्रतिस्पर्द्धा के कारण करना ही पड़ता है) तो वह समाज में मौजूद वास्तविक प्रभावी माँग और आपूर्ति की स्थितियों से नहीं तय होता है, बल्कि पूँजीवादी उत्पादन की आन्तरिक गतिकी से तय होता है। ऐसे में, यह सम्भव है कि पूँजीपति अपने उत्पादित मालों को किसी थोक व्यापारी को बेच दे और अपने पुनरुत्पादन को चालू रखे, लेकिन वह माल थोक व्यापारी और फिर खुदरा व्यापारियों के हाथों पूर्ण रूप से बिक न सके और तभी उत्पादित मालों की अगली खेप पूँजीपति द्वारा थोक व्यापारी को बेच दी जाय। ऐसे में, नये माल पुराने अनबिके मालों के साथ बाज़ार में प्रतिस्पर्द्धा करते हैं। यह सच है कि जब भी उत्पादन विस्तारित होता है, तो नये मज़दूरों को काम पर रखे जाने और उत्पादन के साधनों की पहले से बड़े पैमाने पर बिक्री व उत्पादन के कारण समाज में प्रभावी माँग में भी बढ़ोत्तरी होती है क्योंकि प्रभावी माँग कोई नैसर्गिक रूप से दी गयी चीज़ नहीं होती है बल्कि पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में यह स्वयं पूँजी संचय व लाभप्रदता की गति से निर्धारित होती है। बहरहाल, ऐसे में, यदि उत्पादित माल सुचारू तरीक़े से बिकता रहता है तो कोई दिक्कत नहीं होती। लेकिन कई बार ऐसा नहीं भी होता है। ऐसे में, बाज़ार में ठेल दी गयी मालों की नयी खेप पहले से दुकानदारों की शेल्फ़ों पर पड़े अनबिके मालों के साथ प्रतिस्पर्द्धा करती है और अपने मूल्य से कम क़ीमत पर बिकती है। वास्तव में, यह अपने आप में समाज में वास्तविक माँग की कमी को नहीं दिखलाता है। दरअसल, यह केवल पूँजीपतियों के बीच *भुगतान की माँग* के समय पर पूरा न हो पाने की स्थिति को दिखलाता है। ऐसी स्थितियों में संकट तत्काल उपभोक्ता माँग की कमी में नहीं दिखता, बल्कि पूँजीपतियों के बीच आपसी ख़रीद-फ़रोख़्त की कमी के रूप में प्रकट होता है और इस प्रकार पुनरुत्पादन के संकट के रूप में प्रकट होता है। मार्क्स यहाँ इस संकट के बुनियादी कारक, यानी लाभप्रदता के संकट, की बात अभी नहीं करते हैं। इसके बारे में विस्तार में चर्चा *पूँजी* के तीसरे खण्ड में ही होती है। लेकिन लाभप्रदता की गति का प्रभाव किस प्रकार पुनरुत्पादन की समूची प्रक्रिया पर प्रकट होता है, मार्क्स यहाँ इस परिघटना का विवरण देते हैं। मार्क्स लिखते हैं:

> "जहाँ तक पूँजीवादी उत्पादक का प्रश्न है, अगर उसका उत्पाद बिक जाता है, तो हर चीज़ नियमित रूप में होती रहती है। पूँजी-मूल्य के जिस परिपथ की वह नुमाइन्दगी करता है, वह बाधित नहीं होता है। और अगर यह प्रक्रिया विस्तारित होती है (जिसमें उत्पादन के साधनों के उत्पादक उपभोग का विस्तार भी शामिल है), *तो पूँजी के इस पुनरुत्पादन के साथ मज़दूरों के पक्ष में भी व्यक्तिगत उपभोग (और इस प्रकार माँग) और बढ़ सकती है क्योंकि यह उत्पादक उपभोग द्वारा लायी जाती है और उसी के द्वारा व्यवहित होती है।* बेशी मूल्य का उत्पादन और उसके साथ पूँजीपति का निजी उपभोग भी इस प्रकार बढ़ सकता है, और समूची पुनरुत्पादन की प्रक्रिया अपने आपको बेहद फूलती-फलती स्थिति में पाती है, जबकि वास्तव में मालों का बड़ा हिस्सा बस प्रतीतिगत तौर पर ही उपभोग में गया होता है, और वास्तव में वह खुदरा व्यापारियों के हाथों में अनबिका पड़ा होता है, और इस प्रकार अभी भी बाज़ार में होता है। अब मालों की एक धारा के पीछे दूसरी धारा आती है, और अन्ततः यह बात सामने आती है कि पिछली धारा के बारे में बस ऐसा प्रतीत मात्र हुआ था कि वह उपभोग द्वारा निगल ली गयी है। अब बाज़ार में जगह के लिए माल-पूँजियाँ आपस में होड़ करती हैं। बाद में आने वाले माल बिक पाने की ख़ातिर क़ीमत से कम पर बिकते हैं। पहले की मालों की खेपें अभी तैयार मुद्रा में तब्दील नहीं हो सकी हैं, जबकि उनके लिए भुगतान की तिथि आ चुकी है। उनके मालिक या तो अपने आपको

(पेज 18 पर जारी)

मार्क्सवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र के सिद्धान्त

(पेज 17 से आगे)

दिवालिया घोषित करें या फिर उन्हें किसी भी क़ीमत पर बेचें ताकि अपनी देनदारी का भुगतान कर सकें। *लेकिन इस बिक्री का माँग की वास्तविक स्थिति से कोई भी लेना-देना नहीं होता। इसका रिश्ता मालों को मुद्रा में तब्दील करने की निरपेक्ष अनिवार्यता के साथ भुगतान की माँग मात्र से होता है।* इस बिन्दु में संकट फूट पड़ता है। *यह पहले उपभोक्ता माँग में यानी व्यक्तिगत उपभोग में प्रत्यक्ष कमी के रूप में प्रकट नहीं होता, बल्कि पूँजी के लिए पूँजी के विनिमय की संख्या में कमी के रूप में, यानी पूँजी की पुनरुत्पादन प्रक्रिया में गिरावट के रूप में प्रकट होता है।*" (*वही*, पृ. 156-57, *अनुवाद और ज़ोर हमारा*)

आगे बढ़ते हैं।

मार्क्स बताते हैं कि पूँजीपति द्वारा श्रमशक्ति और उत्पादन के साधनों की ख़रीद अक्सर एक बार में सम्पन्न नहीं होती। कुछ उत्पादन के साधन तत्काल ख़रीद लिये जाते हैं, कुछ की आपूर्ति तत्काल सम्भव नहीं होती, कुछ के लिए भुगतान तो कर दिया जाता है, लेकिन उनकी प्राप्ति बाद में होती है, आदि। ऐसे में, पूँजीपति की मुद्रा-पूँजी का एक साथ उत्पादक-पूँजी के सभी तत्वों के साथ विनिमय नहीं होता है। नतीजतन, मुद्रा की कुछ मात्रा पूँजीपति के हाथों में बनी रहती है। यहाँ हम मुद्रा की एक निधि के निर्माण को देखते हैं। लेकिन यह निधि निर्माण वास्तव में पूँजी के संचरण के प्रक्रिया का एक अंग होता है और उसका अन्तिम मक़सद ख़र्च होना ही होता है। इस रूप में, मार्क्स के शब्दों में, यह सुषुप्त पूँजी है, जो फिलहाल निवेशित नहीं हो रही, लेकिन उसे उत्पादन के साधनों और/या श्रमशक्ति पर निवेशित होना ही है। इसलिए यहाँ मुद्रा की एक निधि या उसके ढेर का इकट्ठा होना, किसी साधारण माल उत्पादक या मज़दूर द्वारा की जा रही बचत नहीं है, जिसे भविष्य में सुरक्षा हेतु बचाकर रखा जाता है, या फिर अपने निजी उपभोग पर ख़र्च किया जाना है। यह सुषुप्तावस्था में पूँजी ही है। पूँजी के संचरण में मुद्रा के ढेर का निर्माण वास्तव में पूँजीवादी पुनरुत्पादन की प्रक्रिया का एक हिस्सा ही होता है और यहाँ भी मुद्रा-पूँजी वही कार्य कर सकती है जिसकी इजाज़त मुद्रा-रूप उसे देता है।

पूँजी संचय और विस्तारित पुनरुत्पादन

साधारण पुनरुत्पादन की स्थिति में उत्पादक-पूँजी के परिपथ पर विस्तार से चर्चा के साथ हम स्वत: ही समझ सकते हैं कि विस्तारित पुनरुत्पादन की सूरत में इसका स्वरूप क्या होगा।

ज़ाहिर है कि पूँजीवादी पुनरुत्पादन को एक प्रक्रिया के रूप में देखें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि पूँजीपति बेशी मूल्य के एक हिस्से को निजी उपभोग में लगायेगा ही। पुनरुत्पादन के कुछ चक्रों में वह बेशी मूल्य के एक हिस्से को निजी उपभोग में लगा सकता है, अन्य चक्रों में उसे पूरी तरह से पूँजी में तब्दील कर सकता है और आपवादिक स्थितियों में किसी चक्र में वह समूचे बेशी मूल्य को निजी उपभोग पर भी ख़र्च कर सकता है। आम तौर पर, वास्तविक दुनिया में यह प्रक्रिया इसी रूप में घटित होती है। लेकिन अगर हम विश्लेषण के लिए यह मान लें पूँजीपति समूचे बेशी मूल्य को संचित कर उसे पूँजी में तब्दील करता है, तो विस्तारित पुनरुत्पादन व उसकी स्थितियों को सटीकता के साथ समझा जा सकता है। इससे उद्घाटित नियमों के आधार पर ही हम उन स्थितियों को भी समझ सकते हैं जिनमें समूचे बेशी मूल्य को पूँजी में तब्दील नहीं किया जाता है, बल्कि उसका एक हिस्सा पूँजीपति के व्यक्तिगत उपभोग में जाता है। फ़र्क एक ही है : अगर बेशी मूल्य को पूरा का पूरा पूँजी में तब्दील किया जाता है तो उसका कोई भी हिस्सा पूँजी के परिपथ से बाहर जाकर मालों के सामान्य संचरण का अंग नहीं बनता, बल्कि पूँजी के परिपथ में ही रहता है, जबकि यदि बेशी मूल्य का एक हिस्सा पूँजीपति के निजी उपभोग में जाता है, तो निजी उपभोग में जाने वाला हिस्सा पूँजी के परिपथ से बाहर जाकर मालों के आम संचरण का अंग बन जाता है। दूसरे मामले में क्या होता है, वह हम साधारण पुनरुत्पादन पर विचार करते हुए समझ चुके हैं और इस वास्तविक रूप में होने वाले विस्तारित पुनरुत्पादन की स्थिति में उत्पादक-पूँजी के परिपथ को समझने के लिए हमें केवल उस समझदारी को ही मौजूदा चर्चा में समेकित करना होगा। इसलिए हम विस्तारित पुनरुत्पादन की स्थितियों की जाँच करते हुए हम यह मानकर चलेंगे कि समूचे बेशी मूल्य को पूँजी में तब्दील किया जा रहा है। इसीलिए मार्क्स लिखते हैं :

"हमने पहले साधारण पुनरुत्पादन पर विचार किया था जिसके सम्बन्ध में हमने माना था कि समूचे बेशी मूल्य को आमदनी के तौर पर ख़र्च कर दिया जाता है। वास्तव में, बेशी मूल्य के एक हिस्से को सामान्य परिस्थितियों में अनिवार्यत: आमदनी के रूप में ख़र्च किया ही जाता है, और दूसरे हिस्से को पूँजी में तब्दील किया जाता है, और इस बाबत यह बिल्कुल अप्रासंगिक है कि कुछ विशिष्ट अवधियों में पैदा होने वाले समूचे बेशी मूल्य का उपभोग कर लिया जाता है, जबकि अन्य मौक़ों पर उसे पूरी तरह से पूँजी में तब्दील कर दिया जाता है। *अगर यह प्रक्रिया औसत रास्ते से गुज़रती है, तो ये दोनों ही चीज़ें घटित होती हैं। सूत्र को जटिल न बना देने के लिए, यह मान लेना बेहतर है कि समूचे बेशी मूल्य का संचय होता है।*" (*वही*, पृ. 159, *अनुवाद और ज़ोर हमारा*)

इस सूरत में उत्पादक-पूँजी का परिपथ कुछ इस प्रकार होगा:

$$P \ldots C'\text{–}M'\text{–}C'\!<^{L}_{mp} \ldots P'$$

इस सूत्र पर विचार करते समय हमें कुछ बातों का ध्यान रखना चाहिए।

पहली बात यह है कि उत्पादन के तकनीकी कारक यह निर्धारित करते हैं कि उत्पादन को किस पैमाने पर विस्तारित किया जा सकता है। ज़ाहिर है कि बेशी मूल्य को पूँजी में तब्दील करके उत्पादन को विस्तारित करने के लिए निवेश किया जा सके, इसके पहले उत्पादन के कई चक्रों तक उसको इकट्ठा करना आवश्यक हो सकता है। क्योंकि नये चक्र में विस्तारित पुनरुत्पादन के लिए उत्पादन के साधनों व श्रमशक्ति में किस मात्रा और किस अनुपात में बढ़ोत्तरी की जा सकती है, यह उत्पादन की तकनीकी स्थितियों से तय होता है और अगर पूँजी के निवेश में किसी भी बढ़ोत्तरी के लिए आवश्यक मुद्रा की न्यूनतम मात्रा बेशी मूल्य के विनियोजन के एक चक्र में पूरी नहीं होती, तो बेशी मूल्य को उत्पादन के कई चक्रों तक इकट्ठा करना ज़रूरी हो जाता है। यानी एक ऐसा दौर हो सकता है जिसमें बेशी मूल्य को एकत्र किये जाने से मुद्रा का एक ढेर या निधि बनती रहे और जब वह एक विशिष्ट सीमा पर पहुँच जाये तभी उसका विस्तारित पुनरुत्पादन के लिए मूल पूँजी-मूल्य के साथ निवेश किया जा सके। ऐसे में भी मुद्रा की यह जो निधि निर्मित होती है, वह *सुषुप्त पूँजी या सम्भावनासम्पन्न पूँजी* है। वजह यह कि इस निधि का निर्माण निवेश के लक्ष्य के साथ ही किया जा रहा है। लेकिन यहाँ यह ध्यान देने योग्य बात है कि इस सुषुप्त पूँजी की निधि के निर्माण से उत्पादन का विस्तार नहीं होता है, बल्कि उल्टे उत्पादन के ज़रिये ही इस सुषुप्त पूँजी की निधि का निर्माण होता है।

दूसरी बात यह है कि उत्पादक-पूँजी के परिपथ की विशिष्टता यह है कि मुद्रा-पूँजी के परिपथ के विपरीत यह परिपथ मूल्य-संवर्धन और मूल्य-संवर्धित पूँजी के मुद्रा के रूप में वास्तवीकरण पर समाप्त नहीं होता है, बल्कि मूल्य-संवर्धन से शुरू होता है और मुद्रा के रूप में मूल्य-संवर्धित पूँजी का वास्तवीकरण महज़ इसका एक चरण है, इसका समापन-बिन्दु नहीं। पहले परिपथ यानी मुद्रा-पूँजी के परिपथ को *अपने आप में* देखें तो वह यह दिखाता है कि 'पैसा कैसे और ज़्यादा पैसा पैदा करता है', यानी किसी प्रकार मुद्रा-पूँजी मूल्य-संवर्धित होकर वापस मुद्रा-रूप में पूँजीपति के पास वापस लौटती है। लेकिन दूसरे परिपथ में हम देखते हैं कि मूल्य-संवर्धन से प्राप्त बेशी मूल्य का पूँजीपति क्या करता है; वह उसे पूरी तरह से निजी उपभोग में ख़र्च कर देता है, या पूर्ण या आंशिक रूप में पूँजी में तब्दील कर उसे वापस मूल्य-संवर्धन की प्रक्रिया यानी पूँजीवादी उत्पादन में लगा देता है। विस्तारित पुनरुत्पादन की स्थिति में जब पूँजी अन्त में वापस अपने उत्पादक-रूप में पहुँचती है, तो उसका मूल्य उत्पादक-पूँजी के मूल्य से ज़्यादा होता है। M…M' के समान इसका रूप P…P' होता है। लेकिन P' हमें केवल यह नहीं बताता कि बेशी मूल्य पैदा हुआ है, बल्कि वह यह भी बताता है कि बेशी मूल्य को वापस पूँजी में तब्दील किया गया है।

इसके विपरीत, M…M' में M' और सभी प्रकार के पूँजी के परिपथों में C' पूँजी-मूल्य के मूल्य-संवर्धन की प्रक्रिया को नहीं बल्कि उसके परिणाम को दिखाता है। ये दोनों ही पूँजी के विभिन्न रूपों (माल-रूप और मुद्रा-रूप) में पूँजी के संचरण के विभिन्न चरणों को दिखलाते हैं। पूँजी का मूल्य-संवर्धन इन रूपों यानी M' और C' का प्रकार्य नहीं होता है, वह केवल उत्पादक-पूँजी यानी P का प्रकार्य होता है। मुद्रा व माल के रूप में पूँजी उन्हीं प्रकार्यों को पूरा कर सकती है जो मुद्रा और माल पूरे कर सकते हैं : यानी, संचरण के प्रकार्य। उत्पादक रूप में पूँजी उन्हीं प्रकार्यों को अंजाम दे सकती है जिसकी इजाज़त उत्पादक के सक्रिय मनोगत कारक के रूप में श्रमशक्ति और उत्पादन की वस्तुगत स्थितियों के रूप में उत्पादन के साधन उसे करने देते हैं, यानी बेशी मूल्य का उत्पादन। मुद्रा-पूँजी इसलिए पूँजी नहीं बनती क्योंकि वह मुद्रा-रूप में है और माल-पूँजी इसलिए पूँजी नहीं होती कि वह माल-रूप में है, बल्कि वे उत्पादन के क्षेत्र में बेशी मूल्य के उत्पादन से गुज़रकर ही पूँजी बनते हैं। साथ ही, उत्पादन के क्षेत्र में श्रम और श्रम की स्थितियों यानी कच्चे माल व श्रम के उपकरण का मेल केवल पूँजीवादी उत्पादन में ही नहीं होता है, बल्कि हर प्रकार के उत्पादन में होता है। इसलिए पूँजी संचरण *में* पूँजी बनती है, लेकिन संचरण *से* पूँजी नहीं बनती। यह उत्पादन के क्षेत्र में उत्पादन के ज़रिये पूँजी बनती है, जिस हद तक उत्पादक-पूँजी के तत्व दूसरों की ख़रीदी गयी श्रमशक्ति और दूसरे माल उत्पादकों से ख़रीदे गये उत्पादन के साधन होते हैं। इसलिए इस पूँजी को एक सम्बन्ध के रूप में गति में ही समझा जा सकता है। मार्क्स लिखते हैं:

"जिस प्रकार उत्पादन के क्षेत्र में औद्योगिक पूँजी *आम तौर पर* उत्पादन की प्रक्रिया के अनुरूप, और इसलिए ग़ैर-पूँजीवादी उत्पादन प्रक्रिया में भी, एक योग के रूप में ही अस्तित्वमान हो सकती है, उसी प्रकार संचरण के क्षेत्र में भी वह केवल उन्हीं दो रूपों यानी माल व मुद्रा के रूप में ही अस्तित्वमान हो सकती है जो इस क्षेत्र के अनुरूप हैं। जिस प्रकार उत्पादन के तत्वों का योग आरम्भ से ही अपने आपको उत्पादक-पूँजी के रूप में ही प्रकट करता है, जिस हद तक श्रमशक्ति दूसरों की श्रमशक्ति है जिसे पूँजीपति ने उसके मालिकों से ख़रीदा है; ठीक उसी प्रकार जैसे उसने अन्य मालों के मालिकों से अपने उत्पादन के साधन ख़रीदे हैं, और इसलिए जिस प्रकार उत्पादक प्रक्रिया स्वयं औद्योगिक पूँजी के उत्पादन-प्रकार्य के रूप में प्रकट होती है – ठीक उसी प्रकार मुद्रा और माल इस औद्योगिक पूँजी के संचरण के रूपों, और ठीक इसीलिए संचरण-प्रकार्यों के रूपों में, औद्योगिक पूँजी के प्रकार्यों के तौर पर प्रकट होते हैं, जो या तो उत्पादक-पूँजी के प्रकार्यों की तैयारी का रास्ता तैयार करते हैं, या उत्पादक-प्रकार्यों के फलस्वरूप पैदा होते हैं। औद्योगिक पूँजी को अपने परिपथ के विभिन्न चरणों में जिन प्रकार्यात्मक रूपों से गुज़रना पड़ता है, उनके सन्दर्भ में ही *मुद्रा-प्रकार्य और माल-प्रकार्य* यहाँ ठीक उसी समय *मुद्रा-पूँजी और माल-पूँजी के प्रकार्य* होते हैं। इसलिए मुद्रा के रूप में मुद्रा और माल के रूप में माल के विशिष्ट गुणों और प्रकार्यों को पूँजी के रूप में उनके चरित्र पर आरोपित कर देना ग़लत है, और इसके विपरीत यह भी उतना ही ग़लत है कि उत्पादन के साधनों के रूप में उसके अस्तित्व के आधार पर ही हम उत्पादक-पूँजी के गुणों की पहचान करें।" (*वही*, पृ. 161, *अनुवाद और ज़ोर हमारा*)

इस जटिल उद्धरण का अर्थ सिर्फ़ इतना है कि माल, मुद्रा या भौतिक अर्थों में उत्पादन के साधन अपने आप में पूँजी के रूप नहीं होते हैं, बल्कि पूँजी-मूल्य की गति में ही वे पूँजी *बनते* हैं। माल या मुद्रा माल-पूँजी या मुद्रा-पूँजी इसलिए नहीं होते क्योंकि वे माल या मुद्रा हैं, बल्कि इसलिए होते हैं क्योंकि वे पूँजी के परिपथ में उत्पादन के क्षेत्र में मूल्य-संवर्धन से गुज़र चुके होते हैं या मूल्य-संवर्धन की तैयारी की ज़मीन तैयार करते हैं। ठीक उसी प्रकार उत्पादन के साधन या किसी भी प्रकार के उत्पादक की प्राकृतिक श्रमशक्ति (जो माल में तब्दील नहीं हुई है) भी स्वयं अपने आप में पूँजी नहीं होते हैं, बल्कि वे तभी पूँजी की भूमिका निभाते हैं जब पूँजीपति दूसरों की माल बन चुकी श्रमशक्ति और दूसरे माल उत्पादकों (पूँजीवादी या ग़ैर-पूँजीवादी) द्वारा उत्पादित उत्पादन के साधनों को अपनी मुद्रा-पूँजी द्वारा ख़रीदते हैं। *यानी, पूँजी को एक सामाजिक सम्बन्ध के रूप में ही समझा जा सकता है।* उत्पादक-पूँजी का परिपथ इसे और भी ज़्यादा स्पष्ट कर देता है।

आगे मार्क्स बताते हैं कि M…M' के पूरा होने के बाद जब मूल्य-संवर्धित पूँजी अपने परिपथ का दूसरा चरण शुरू करती है, तो वह M' के रूप में नहीं बल्कि M के रूप में ही करती है क्योंकि अगले चक्र में मूल्य-संवर्धन के चिह्न ओझल हो चुके होते हैं। किसी भी अन्य पूँजीपति के समान जो पहली बार पूँजी निवेश करते हुए M के साथ अपनी मुद्रा-पूँजी के परिपथ की शुरुआत करता है, उसी प्रकार अपनी पूँजी का मूल्य-संवर्धन कर चुका पूँजीपति भी अगले चक्र की शुरुआत M के साथ ही करता है, M' के साथ

(पेज 19 पर जारी)

मार्क्सवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र के सिद्धान्त

(पेज 18 से आगे)

नहीं। उसी प्रकार, जब उत्पादक-पूँजी के परिपथ का दूसरा चक्र शुरू होता है, तो वह P' के साथ नहीं बल्कि P के साथ ही शुरू होता है। इसकी वजह यह भी है कि P के तत्वों, यानी L और mp को हम L' और mp' के रूप में नहीं दिखा सकते क्योंकि पूँजीवादी पुनरुत्पादन में श्रमशक्ति और उत्पादन सम्बन्धों का अनुपात व उनके मूल्य-सम्बन्ध बदलते रहते हैं।

मुद्रा का संचय और उसके निहितार्थ

हम ऊपर इस पर चर्चा कर चुके हैं कि विस्तारित पुनरुत्पादन की सूरत में बेशी मूल्य के पूँजी में तब्दील होने की कुछ बुनियादी शर्तें होती हैं। सबसे महत्वपूर्ण शर्त यह है कि बेशी मूल्य इस हद तक एकत्र होना चाहिए कि उसे पूँजी में तब्दील कर वापस उत्पादन में लगाया जा सके। यह दो कारकों में निर्भर करता है : उत्पादन के कारकों का भौतिक अनुपात और उनके मूल्य-सम्बन्ध। ये दोनों ही पूँजीवादी उत्पादन में परिवर्तित होते रहते हैं क्योंकि हर माल का मूल्य सतत् बदलता रहता है। वजह यह कि श्रम की उत्पादकता में अलग-अलग शाखाओं में अलग-अलग दर से और अलग-अलग दिशा में परिवर्तन होते रहते हैं। उपरोक्त दो कारकों के आधार पर ही यह तय होता है कि बेशी मूल्य के संचय की वह न्यूनतम सीमा क्या होगी, जिसके बाद उसे पूँजी में तब्दील किया जा सकता है।

दूसरी बात यह कि जब तक बेशी मूल्य का संचय उपरोक्त सीमा तक नहीं पहुँच जाता तब तक वह मुद्रा के एक ढेर के रूप में एकत्र होता रहता है। पूँजी के परिपथ के दुहराव के साथ यह संचय बढ़ता है और अन्ततः उस न्यूनतम सीमा तक पहुँचता है जहाँ बेशी मूल्य का पूँजीकरण (capitalization) किया जा सकता है। इस संचय के कारक स्वयं मुद्रा के प्रकार्य से बाहर, यानी उत्पादन के क्षेत्र में मौजूद होते हैं, जिसके दुहराव के साथ ही पैसों का यह ढेर बढ़ता है। बेशी मूल्य के इकट्ठा होने की यह प्रक्रिया अस्थायी तौर पर औद्योगिक पूँजी के परिपथ में जारी रहती है। अस्थायी तौर पर इसलिए क्योंकि जब तक बेशी मूल्य एक न्यूनतम सीमा तक इकट्ठा नहीं हो जाता तब तक वह उत्पादन में लगी औद्योगिक पूँजी के आकार को बढ़ा नहीं सकता और महज़ एक मुद्रा के ढेर के रूप में मौजूद रहता है। और जब वह उस सीमा तक पहुँचकर पूँजी में तब्दील हो जाती है, तो वह ठहरी सुषुप्त मुद्रा-पूँजी यानी बेशी मूल्य के संचय से एकत्र मुद्रा का ढेर मात्र नहीं रह जाती है।

तीसरी बात यह कि यहाँ मुद्रा का ढेर बनना किसी प्राक्-पूँजीवादी माल उत्पादन में मुद्रा के ढेर बनने से बिल्कुल भिन्न है। वहाँ मुद्रा की ऐसी निधि का निर्माण अपने आप में एक लक्ष्य होता है क्योंकि उत्पादन का लक्ष्य मुनाफ़ा अर्जित करना नहीं बल्कि प्रत्यक्ष माल उत्पादक का उपभोग होता है और मूल्य के स्वतन्त्र रूप में मुद्रा का भण्डार इसी लक्ष्य की पूर्ति करता है। लेकिन पूँजीवादी उत्पादन में बेशी मूल्य के सतत् पैदा होने और एकत्र किये जाने के परिणामस्वरूप बनने वाले मुद्रा के ढेर का मक़सद ही वापस उत्पादन में लगकर और ज़्यादा बेशी मूल्य पैदा करना होता है। यानी, अधिक से अधिक मुनाफ़ा अर्जित करना उत्पादन का लक्ष्य होता है, न कि उपभोग। इसलिए यहाँ मुद्रा का यह ढेर वास्तव में सुषुप्त पूँजी या सम्भावनासम्पन्न पूँजी की भूमिका निभाता है, जिसे कालान्तर में उत्पादन में ही लगाया जाना होता है।

आख़िरी बात यह कि अभी हम इस निधि के रूप को उसके मूल रूप यानी ठोस रूप में मुद्रा के रूप में ही समझ रहे हैं, लेकिन यह निधि अन्य रूप भी ले सकती है। मसलन, पूँजीपति की तमाम लेनदारियों का रूप जो अभी मूर्त मुद्रा रूप में उसके हाथों में वास्तवीकृत नहीं हुई है। जैसे कि पूँजीपति ने क्रेडिट पर किसी अन्य पूँजीपति को अपना माल बेचा है और उसके बदले में मुद्रा-रूप में उसकी क़ीमत उसे भविष्य में मिलने वाली होती है। यानी, यह इस पूँजीपति की लेनदारी है। ऐसी तमाम लेनदारियों के रूप में भी पूँजीपति के पास बेशी मूल्य के एकत्र होने से बनने वाली निधि निर्मित हो सकती है। इसके अलावा, पूँजीपति बेशी मूल्य के इकट्ठा होने से बन रहे मुद्रा के ढेर को वित्तीय जगत में भी लगा सकता है, मसलन, शेयर, बॉण्ड या सिक्योरिटी के रूप में जो उसे एक निश्चित समय में ब्याज भी देते हैं। लेकिन यहाँ पर यह ढेर स्वयं पूँजी की भूमिका में आ जाता है, हालाँकि जिस पूँजीपति की हम बात कर रहे हैं, उसकी पूँजी के परिपथ से वह बाहर चला जाता है और सूदखोर पूँजी के रूप में सीधे 'पैसे से पैसा' बनाता है। इन रूपों की चर्चा हम अभी नहीं करेंगे क्योंकि इनकी वैयक्तिक पूँजियों के परिपथों को समझने में इनकी प्रत्यक्षतः कोई भूमिका नहीं है।

आरक्षित निधि

मुद्रा का यह संचय आरक्षित निधि की भूमिका भी निभा सकता है, जो कि सुषुप्त पूँजी के रूप में इस संचय की भूमिका से अलग होता है। मसलन, अगर किसी भी वजह से पूँजीपति द्वारा उत्पादित मालों की बिकवाली में ठहराव आता है या ज़्यादा वक़्त लगता है, तो पूँजीपति अपनी पूँजी के संचरण को जारी रखने के लिए इस संचित मुद्रा का इस्तेमाल कर सकता है। इसके अलावा, अगर पूँजीपति द्वारा अपनी मुद्रा-पूँजी को दोबारा उत्पादन में लगाने का वक़्त आते-आते उत्पादन के साधनों की क़ीमत या श्रमशक्ति के मूल्य व मज़दूरी में बढ़ोत्तरी हो जाती है, तो उत्पादन का विस्तार किये बिना भी पूँजीपति को अपनी पूँजी के संचरण की प्रक्रिया को जारी रखने के लिए पहले से ज़्यादा मुद्रा-पूँजी का निवेश करना पड़ सकता है। उस सूरत में भी पूँजीपति इस आरक्षित निधि का इस्तेमाल कर सकता है। यहाँ मुद्रा का यह संचय सुषुप्त पूँजी की भूमिका में नहीं है, क्योंकि उसका इस्तेमाल उत्पादन के पैमाने के विस्तार के लिए नहीं हो रहा है बल्कि संयोगवश पैदा हुई स्थितियों में पूँजी के संचरण की प्रक्रिया को जारी रखने के लिए हो रहा है। पूँजीपति अपनी सक्रिय पूँजी को भी निवेश करते समय एक साथ बिरले ही उसे निवेशित करता है। उसका कुछ हिस्सा तत्काल लग जाता है, कुछ हिस्सा कुछ समय बाद लगाया जाता है और कुछ पूँजी संचरण को जारी रखने के लिए उसके हाथ में रहती है। लेकिन आरक्षित निधि इससे अलग है। वह सक्रिय पूँजी का हिस्सा नहीं है, न ही वह उत्पादन के विस्तार हेतु निवेशित की जा रही है। यह आकस्मिक परिस्थितियों में काम आ रही है, जब बदली हुई आर्थिक स्थितियों के कारण पूँजी के संचरण की प्रक्रिया को जारी रखने के लिए पूँजीपति ख़र्च कर रहा है।

जो भी हो, यह रिज़र्व फण्ड या आरक्षित निधि भी पूँजीवादी उत्पादन की प्रक्रिया में निर्मित होने वाला मुद्रा का संचय ही है। यदि यह उत्पादन के विस्तार हेतु एकत्र किया जाता है, तो यह कालान्तर में पूँजी की भूमिका में आ जाता है और इस रूप में सुषुप्त पूँजी की भूमिका निभाता है, अन्यथा यह अन्य सेवाएँ प्रदान करने का काम भी कर सकता है और पूँजी के संचरण में उत्पादन को विस्तारित किये बिना भी लग सकता है, जिस रूप में यह आरक्षित निधि की भूमिका निभाता है। उत्पादन की प्रक्रिया में आने वाले उतार-चढ़ाव के कारण कई बार पूँजी के संचरण की प्रक्रिया को जारी रखने के लिए इस आरक्षित निधि का इस्तेमाल पूँजीपति को करना पड़ता है। वह यह नहीं सोच सकता कि मुद्रा की इस निधि के और कौन-कौन से प्रकार्य हो सकते हैं या होंगे। जैसा कि मार्क्स लिखते हैं:

> "ज़ाहिरा तौर पर, कहने की आवश्यकता नहीं कि जब पूँजीपति को ज़रूरत होती है, तो वह किसी भी रूप में इस पर दिमाग़ नहीं खपाता कि उस मुद्रा के विशिष्ट प्रकार्य क्या-क्या हैं जो उसके हाथों में है, बल्कि वह अपनी पूँजी की संचरण की प्रक्रिया को फिर से गतिमान करने के लिए हर उस निधि का प्रयोग करता है, जो उसके हाथों में होती है।" (*वही*, पृ. 165)

●

अन्त में, उत्पादक-पूँजी के परिपथ को आम तौर पर हम इस रूप में दर्शा सकते हैं:

$$P\ldots\overset{1}{\widehat{C'-M'}}.\overset{2}{\widehat{M-C}}\!<^{L}_{mp}\ldots P(P')$$

यदि P = P तो इसका अर्थ है कि दूसरे क्षैतिज कोष्ठक यानी (2) में M = M'–m और अगर P = P' है तो दूसरे क्षैतिज कोष्ठक यानी (2) में M का परिमाण M'–m से ज़्यादा है, यानी किसी न किसी मात्रा में बेशी मूल्य का पूँजीकरण हुआ है और विस्तारित पुनरुत्पादन हुआ है।

(अगले अंक में जारी)

भारतीय जनता के जीवन, संघर्ष और स्वप्नों के सच्चे चितेरे

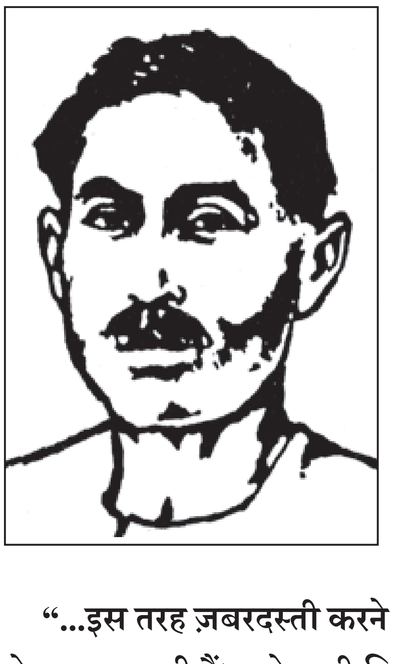

महान कथा-शिल्पी प्रेमचन्द के जन्मदिवस (31 जुलाई) के अवसर पर

"जब तक सम्पत्ति मानव-समाज के संगठन का आधार है, संसार में अन्तरराष्ट्रीयता का प्रादुर्भाव नहीं हो सकता। राष्ट्रों-राष्ट्रों की, भाई-भाई की, स्त्री-पुरुष की लड़ाई का कारण यही सम्पत्ति है। संसार में जितना अन्याय और अनाचार है, जितना द्वेष और मालिन्य है, जितनी मूर्खता और अज्ञानता है, उसका मूल रहस्य यही विष की गाँठ है। जब तक सम्पत्ति पर व्यक्तिगत अधिकार रहेगा, तब तक मानव-समाज का उद्धार नहीं हो सकता। मज़दूरों के काम का समय घटाइए, बेकारों को गुज़ारा दीजिए, ज़मींदारों और पूँजीपतियों के अधिकारों को घटाइए, मज़दूरों-किसानों के स्वत्वों को बढ़ाइए, सिक्के का मूल्य घटाइए, इस तरह के चाहे जितने सुधार आप करें, लेकिन यह जीर्ण दीवार इस तरह के टीपटाप से नहीं खड़ी रह सकती। इसे नये सिरे से गिराकर उठाना होगा।"

– प्रेमचन्द (27 फ़रवरी 1933 के 'जागरण' के सम्पादकीय में)

"...इस तरह ज़बरदस्ती करने के लिए जो क़ानून चाहे बना लो। यहाँ कोई सरकार का हाथ पकड़ने वाला तो है ही नहीं। उसके सलाहकार भी तो सेठ-महाजन ही हैं। ...ये सभी नियम पूँजीपतियों के लाभ के लिए बनाये गये हैं और पूँजीपतियों को ही यह निश्चय करने का अधिकार दिया गया है कि उन नियमों का कहाँ व्यवहार करें। कुत्ते को खाल की रखवाली सौंपी गयी है।"

– प्रेमचन्द ('रंगभूमि' उपन्यास का पात्र सूरदास)

डाक पंजीयन : SSP/LW/NP-319/2023-2026
प्रेषण डाकघर : आर.एम.एस, चारबाग़, लखनऊ
प्रेषण तिथि : दिनांक 5, प्रत्येक माह

नक़ली और ख़राब दवाओं के ज़रिये मुनाफ़ा बटोरने के लिए दवा कम्पनियों को मोदी सरकार की छूट और चरमराती सार्वजनिक स्वास्थ्य व्यवस्था

● नीशू

जहाँ कहीं भी चिकित्सा विज्ञान के प्रति प्रेम होता है, वहाँ मानवता के प्रति भी प्रेम होता है। यह बात अपने दौर में चिकित्सा विज्ञान के जनक माने जाने वाले हिप्पोक्रेटस ने कहा था। यह कथन रेखांकित करता है कि स्वास्थ्य का सवाल मनुष्य के जीवन में कितना महत्वपूर्ण सवाल है। लेकिन आज की सरकारी स्वास्थ्य व्यवस्था की लचर हालत से से कोई भी इन्कार नहीं कर सकता है। देश के PHC, CHC (प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र, सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र) से लेकर, भाजपा सरकार द्वारा खोले गए तथाकथित एम्स की सूची में आने वाले अस्पताल भी डॉक्टरों और स्टाफ की कमी से जूझ रहे हैं, क्योंकि भर्तियाँ ही नहीं की जा रही हैं। बेहतर गुणवत्ता की दवाइयाँ, जाँच के उपकरणों का बेहद अभाव है। आँकड़ें बताते हैं कि भारत में 9.6 प्रतिशत प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों में डॉक्टर नहीं हैं, 33 प्रतिशत में लैब तकनीशियन नहीं हैं, 24 प्रतिशत में फार्मासिस्ट नहीं हैं। सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्रों में 70 प्रतिशत से ज़्यादा विशेषज्ञों के पद खाली हैं। 2021 की एक रिपोर्ट के मुताबिक़ सरकारी अस्पतालों में सिर्फ़ 80 लाख बेड ही मौजूद हैं, जबकि लगभग 2.5 करोड़ बेड की आवश्यकता है, मतलब लगभग इनमें 70 प्रतिशत की कमी है।

मजबूरी के कारण लोगों को प्राइवेट अस्पतालों की ओर रुख करना पड़ता है। अच्छे प्राइवेट अस्पताल काफ़ी महँगे और आम मेहनतकश आबादी कि पहुँच से दूर हैं। मज़दूर अगर किसी तरह किसी प्रकार के प्राइवेट अस्पतालों तक पहुँच भी जाता है तो भ्रष्ट डॉक्टरों और दवा कम्पनियों की ठगी का शिकार होता है। आज नक़ली दवाओं का बहुत बड़ा व्यापार खड़ा है। दिल्ली, महाराष्ट्र, तमिलनाडु, केरल, उत्तर प्रदेश और बिहार जैसे राज्य नकली व ख़राब गुणवत्ता वाली दवाओं की बिक्री का गढ़ बने हुए हैं। ड्रग कण्ट्रोलर जनरल ऑफ़ इण्डिया ने जाँच में पाया कि देश में बिक रही 50 प्रतिशत दवाइयाँ ख़राब स्तर की बन रही हैं। इस स्थिति की भयावहता का अन्दाज़ा हालिया दिनों में आयी कुछ ख़बरों से लगाया जा सकता है कि चन्द मुट्ठी भर लोगों के मुनाफ़े के लिए किस तरह इन्सानी ज़िन्दगी को मौत के मुँह में धकेला जा रहा है।

28 जून को 'दि हिन्दू' में प्रकाशित एक ख़बर के मुताबिक, टीबीआईजे (द ब्यूरो ऑफ इन्वेस्टिगेटिव जर्नलिज़्म) ने खुलासा किया कि दुनिया भर में इस्तेमाल की जाने वाली महत्वपूर्ण कीमोथेरेपी दवाएँ गुणवत्ता परीक्षण में विफल पायी गयी हैं, कैंसर की दवाओं में से लगभग पाँचवी दवा गुणवत्ता परीक्षण में विफल रहीं, जिसके कारण 100 से अधिक देशों में कैंसर रोगियों को निष्प्रभावी उपचार और सम्भावित घातक दुष्प्रभावों का ख़तरा बना हुआ है। इन दवाइयों के 17 में से 16 निर्माता भारत स्थित हैं। ये दवाइयाँ जीवनरक्षक दवाओं की श्रेणी में आती हैं, जो स्तन, डिम्बग्रन्थि (ओवरी) और ल्यूकेमिया सहित कई आम कैंसरों के उपचार की रीढ़ हैं। कुछ दवाओं में उनके मुख्य घटक इतने कम थे कि फार्मासिस्टों ने कहा कि उन्हें मरीज़ों को देना कुछ न करने के बराबर होगा। कुछ अन्य दवाओं में, जिनमें बहुत अधिक सक्रिय घटक होते हैं, मरीज़ों को गम्भीर अंग क्षति या यहाँ तक कि मृत्यु का ख़तरा पैदा कर सकते हैं। ये दोनों ही स्थितियाँ भयावह और दिल दहला देने वाली हैं। जहाँ पहली स्थिति में पर्याप्त दवा न मिलने पर मरीज़ों का इलाज नहीं हो पाता और उनकी मौत हो जाती है, वहीं दूसरी स्थिति में दवा का ओवरडोज़ उन्हें मौत के घाट उतार सकता है।

भारतीय केन्द्रीय औषधि मानक नियन्त्रण संगठन (CDSCO) ने पिछले चार महीनों, जनवरी से अप्रैल 2025 तक में कुल 575 दवाओं को मानक गुणवत्ता से कम और नक़ली (स्प्यूरियस) के रूप में पहचान की है। CDSCO ने बताया कि अप्रैल में केन्द्र की 60 और राज्य की 136 दवाओं को मानक गुणवत्ता से कम, नक़ली, मिलावटी या ग़लत ब्राण्ड का पाया गया। इनमें आई ड्रॉप से लेकर पैरासिटामोल टैबलेट तक विभिन्न प्रकार की दवाएँ शामिल हैं। साल 2024 सितम्बर में भी सीडीएससीओ द्वारा जारी, मासिक ड्रग अलर्ट में एण्टासिड पैन डी, कैल्शियम सप्लीमेण्ट शेल्कल, मधुमेह-रोधी दवा ग्लिमेपिराइड, उच्च रक्तचाप की दवा टेल्मिसर्टन और कई अन्य सबसे ज़्यादा बिकने वाली दवाओं को गुणवत्ता परीक्षण में विफल पाया गया था।

क्या है केन्द्रीय औषधि मानक नियन्त्रण संगठन (CDSCO) का काम

CDSCO भारत सरकार की एक प्रमुख संस्था है जो दवाओं, टीकों, सर्जिकल उपकरणों और चिकित्सा उपकरणों की गुणवत्ता, सुरक्षा और प्रभावकारिता की निगरानी करती है। यह संगठन दवा कम्पनियों को लाइसेंस प्रदान करता है, नई दवाओं के परीक्षण और आयात को नियन्त्रित करता है, और दवाओं के निर्माण की गुणवत्ता सुनिश्चित करता है। CDSCO की ज़िम्मेदारी है कि वह सभी दवाओं की नियमित जाँच करे और यदि कोई दवा मानकों के अनुरूप न हो तो उसके ख़िलाफ़ कड़ी कार्रवाई करे। लेकिन यहाँ CDSCO की भूमिका पर सवाल तो उठता है कि क्या यह संस्था ढंग से काम कर रही है? और अगर कर रही है तो नक़ली दवाओं का व्यापार क्यों फल-फूल रहा है?

साल 2022 में अफ़्रीका के गाम्बिया में 69 मासूमों को, उनके घर वालों ने दवाइयाँ की ख़राब गुणवत्ता के कारण खो दिया। सर्दी-ज़ुकाम की शिकायत के उपरान्त इन बच्चों के अभिभावकों ने वहाँ के बाज़ारों में उपलब्ध भारत में निर्मित कफ़ सिरप दिये थे। नक़ली और ख़राब गुणवत्ता की दवाइयों का धन्धा भारत में कई सालों से निरन्तर चल रहा है। मध्य प्रदेश, केरल, गुजरात, हिमाचल, दिल्ली, महाराष्ट्र में नक़ली दवाइयाँ बनाने वाली कम्पनियाँ बिना रोक-टोक उत्पादन कर रही है। पिछले दिनों जब गुणवत्ता परीक्षण में विफल पायी जाने वाली दवाओं के बैच वापस लेने की बारी आयी तब सीडीएससीओ ने केवल इन दवाओं के कम्पनियों को निर्देशित किया और उन्हें यह बताया कि दवा महानियन्त्रक (DCGI) लगातार दवाओं की गुणवत्ता पर नज़र रखे हुए हैं और ग़लत दवाएँ बनाने वाली कम्पनियों के ख़िलाफ़ सख़्त कार्रवाई कर रहे हैं। मुनाफ़ा केन्द्रित व्यवस्था किस तरह मुट्ठी भर धनपशुओं की सेवा बड़ी आबादी के जान पर खेल करती है यह CDSCO की भूमिका से साफ़ हो जाता है।

पूँजीवादी व्यवस्था में सरकारों की प्रतिबद्धता

ड्रग्स एण्ड कॉस्मेटिक्स एक्ट 1940 भारत में घटिया दवाओं से सम्बन्धित अपराधों के लिए सज़ा तय करता है जिसके तहत

– नक़ली और मिलावटी दवाओं पर कम से कम 10 साल की क़ैद है, जिसे आजीवन कारावास तक बढ़ाया जा सकता है।

– मामूली सबस्टैण्डर्ड दवाओं पर 1 साल की क़ैद की सज़ा, जो 2 साल तक बढ़ सकती है।

लेकिन मज़दूर विरोधी फ़ासीवादी मोदी सरकार द्वारा इस क़ानून में संशोधन करके 'जन विश्वास विधेयक' 2023 लाकर सज़ा को हल्का कर दिया गया। इस "जन विश्वास" विधेयक में जन की लाशों पर मुट्ठी भर धनपशुओं का जीवन सुरक्षित किया गया है।

जन विश्वास विधेयक के तहत किए गए संशोधन में धारा 27 (डी) के तहत मानक गुणवत्ता (एनएसक्यू) की न होने वाली दवाओं के लिए सज़ा को "संयोजित" करने की अनुमति दी गई है, जिसके तहत निर्माता अपराध के लिए कारावास का सामना करने के बजाय ज़ुर्माना भरकर मुक्त हो सकता है। सरकारें किस तरह पूँजीपतियों की मैनेजिंग कमेटी व सुरक्षा पंक्ति का काम करती हैं स्पष्ट है। फ़ासीवादी मोदी सरकार ने, पूँजीपतियों को ज़्यादा से ज़्यादा मुनाफ़ा हो सके इसके लिए हर तरह के उपाय किये हैं चाहे वह श्रम कानून में संशोधन के जरिए फ़ैक्ट्री-कारख़ाने में ख़ून चूसने की छूट हो या जन विश्वास जैसे विधेयक लाकर उन्हें जघन्यतम अपराधों से अपराध मुक्त करना हो। ये सब मज़दूरों-मेहनतकशों की जीविका, सुरक्षा और स्वास्थ्य की क़ीमत पर किया जा रहा है।

हम मज़दूर-मेहनतकशों को यह समझना होगा कि निजी मुनाफ़े पर टिकी पूँजीवादी व्यवस्था में हमारे लिए कुछ भी बेहतर नहीं है। चुनावबाज पार्टियों के लिए हम केवल एक वोट बैंक हैं, और पूँजीपतियों के लिए पैसे छापने की मशीन। लेकिन यह तब तक है जब तक मज़दूर वर्ग संगठित नहीं है, जब भी हमने संगठित होकर अपने हक़ों के लिए संघर्ष किया है तब-तब बहुत-कुछ हासिल भी किया है, चाहे वह कार्यस्थल पर सुरक्षा का सवाल हो, मज़दूरी का हो, उचित मुआवज़े का या स्वास्थ्य का।

समाजवादी क्रान्तियों द्वारा बनाये गये समाजवादी समाज के इतिहास से हम सीख सकते हैं

मेहनतकशों द्वारा स्थापित सोवियत सत्ता ने एक केन्द्रीकृत चिकित्सा प्रणाली को अपनाया जिसका लक्ष्य था छोटी दूरी में इलाज़ करना और लम्बी दूरी में बीमारी से बचाव के साधनों-तरीक़ों पर ज़ोर देना ताकि लोगों के जीवन स्तर को सुधारा जा सके। इस प्रणाली का मक़सद था नागरिकों को उनके रहने और काम करने की जगह पर बुनियादी स्वास्थ्य सुविधाएँ उपलब्ध करवाना। इसके तहत सबसे पहले सहायता स्टेशनों, फिर पॉलीक्लिनिक, फिर जिलों और शहरों में बड़े अस्पतालों का निर्माण किया गया। तमाम सरकारी विभागों, फ़ैक्ट्रियों, कारख़ानों, खदानों, खेतों आदि में काम करने वाले मज़दूरों, किसानों, कर्मचारियों, नागरिकों को उनकी काम करने और रहने की जगह पर ही स्वास्थ्य सेवाएँ उपलब्ध करवायी गयीं व लोगों को स्वास्थ्य अधिकारों के प्रति जागरुक किया गया। सोवियत संघ के संविधान में 1936 में लिख दिया गया कि जनता को मुफ़्त स्वास्थ्य सुविधाएँ देना सरकार का कर्तव्य है और केवल लिखा ही नहीं बल्कि इस बात को पूरे देश में लागू किया गया। स्वास्थ्य व्यवस्था से मुनाफ़ा कमाने का पहलू ख़त्म कर दिया गया।सोवियत संघ में बीमारियों के इलाज़ पर नहीं, बल्कि बीमारियों की रोकथाम पर भी उचित ध्यान दिया गया। नतीजतन, वहाँ औसत जीवन-प्रत्याशा, औसत जनस्वास्थ्य व जीवन की गुणवत्ता में भारी सुधार हुआ।

जिन पूँजीवादी-साम्राज्यवादी देशों ने दुनिया भर में लूट के बूते कुछ ख़र्चकर अपने घर में शान्ति रखने के लिए जनता के लिए कुछ कल्याणवाद किया और गुणवत्ता वाली सार्वजनिक स्वास्थ्य व्यवस्था का निर्माण किया, वहाँ की मृत्युदर में गिरावट आयी और लोंगो की ज़िन्दगी सुरक्षित हुई। लेकिन विशेष तौर पर जिन देशों में मेहनतकशों ने अपना राज स्थापित किया मसलन सोवियत यूनियन और चीन, वहाँ स्वास्थ्य ही नहीं बल्कि शिक्षा, आवास, काम की बेहतर परिस्थितियाँ हर मुद्दे पर प्रगति हासिल की और दुनिया के सामने मिसाल पेश की।

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी कात्यायनी सिन्हा द्वारा 263, हरिभजन नगर, शहीद भगतसिंह वार्ड, तकरोही, इन्दिरानगर, लखनऊ- 226016 से प्रकाशित और उन्हीं के द्वारा मल्टीमीडियम, 310, संजय गांधी पुरम, फ़ैज़ाबाद रोड, लखनऊ से मुद्रित। सम्पादक : अभिनव ● सम्पादकीय पता : 263, हरिभजन नगर, शहीद भगतसिंह वार्ड, तकरोही, इन्दिरानगर, लखनऊ- 226016